अंक :१०८

अक्तूबर - दिसंबर २००९

कथाबिंब

कथाप्रधान त्रैमासिक पत्रिका

कहानियाँ

सुशांत सुप्रिय, संजीव निगम, नज़्म सुभाष,
महेश कटारे सुगम, नरेंद्र कौर छाबड़ा

१५ रूपये

अक्तूबर-दिसंबर २००९
(१९७९ से प्रकाशित)

कथाबिंब

प्रधान संपादक
डॉ. माधव सक्सेना "अरविंद"
संपादिका
मंजुश्री
संपादन सहयोग
प्रबोध कुमार गोविल
जय प्रकाश त्रिपाठी
अश्विनी कुमार मिश्र
हम्माद अहमद ख़ान
संपादन-संचालन पूर्णतः
अवैतनिक तथा अव्यवसायिक

●सदस्यता शुल्क●
आजीवन : ५०० रु., **त्रैवार्षिक** : १२५ रु.,
वार्षिक : ५० रु.,
(वार्षिक शुल्क ५ रु. के डाक टिकटों के रूप में भी स्वीकार्य है)
कृपया सदस्यता शुल्क चैक (कमीशन जोड़कर), मनीऑर्डर, डिमांड ड्राफ्ट द्वारा केवल **"कथाबिंब"** के नाम ही भेजें.
●रचनाएं व शुल्क भेजने का पता●
ए-१० बसेरा, ऑफ दिन-क्वारी रोड,
देवनार, मुंबई-४०० ०८८.
फोन : २५५१ ५५४१, ९८१९१६२६४८

● **न्यूयॉर्क संपर्क** ●
Naresh Mittal, Gerard Pharmacy,
903 Gerard Avenue, Bronx NY 10452
Tel : 718-293-2285, 845-304-2414 (M)

●**"कथाबिंब" वेबसाइट पर उपलब्ध** ●
www.kathabimb.com

e-mail : kathabimb@yahoo.com
(कृपया रचनाएं भेजने के लिए ई-मेल का प्रयोग न करें.)

एक प्रति का मूल्य : १५ रु.
कृपया नमूने की प्रति मंगाने हेतु १५ रु. के डाक टिकट अवश्य भेजें.
(सामान्य अंक : ४०-४४ पृष्ठ)

क्रम

कहानियां

।। ७ ।। लौटना / **सुशांत सुप्रिय**
।। ११ ।। कभी कभी मेरे दिल में ... / **संजीव निगम**
।। १५ ।। भेड़िए / **नज़्म सुभाष**
।। २० ।। मुक्ति / **महेश कटारे "सुगम"**
।। २४ ।। अपराधबोध / **नरेंद्र कौर छाबड़ा**

लघुकथाएं

।। २८ ।। अजहर / **आनंद बिल्थरे**
।। ३५ ।। महिला उत्थान / **अनंत भटनागर**
।। ३८ ।। मनुहार / **राधेश्याम पाठक**
।। ४३ ।। प्रीत का अंजन / **आनंद बिल्थरे**
।। ४५ ।। साधना / **राजेंद्र वर्मा**

गीतिका / ग़ज़लें / कविताएं

।। १४ ।। गीतिका / **रमेश चंद्र शर्मा "चंद्र"**
।। २३ ।। दो ग़ज़लें / **सुशांत सुप्रिय**
।। ३१ ।। किसान / **गाफिल स्वामी**
।। ४४ ।। एक और मैं / **पद्मजा सेन**
।। ४४ ।। काट दिये जाओगे / **श्याम नारायण श्रीवास्तव**
।। ४५ ।। ज़िंदगी है क्या ?, बचपन के दिन / **रजनी मोरवाल**
।। ४६ ।। अधूरेपन की अनुभूति / **मधु प्रसाद**
।। ४६ ।। निष्कासित, पिता / **राही शंकर**

स्तंभ

।। २ ।। "कुछ कही, कुछ अनकही"
।। ४ ।। लेटर बॉक्स
।। २९ ।। "आमने-सामने" / **नरेंद्र कौर छाबड़ा**
।। ३७ ।। "बाइस्कोप"(*सविता बजाज*) / **गुलज़ार**
।। ३९ ।। पुस्तक-समीक्षाएं

आवरण चित्र : डॉ. अरविंद
(प्रयागराज संगम की ओर : यमुना का किनारा)

"कथाबिंब" मुंबई की "संस्कृति संरक्षण संस्था" के सौजन्य से प्रकाशित होती है.

कुछ कही, कुछ अनकही

इस अंक के साथ **"कथाबिंब"** प्रकाशन का एक साल और पूरा हुआ. उपग्रह टी. वी. के २४ घंटे के प्रसारण के इस युग में किसी भी पत्रिका को अपने आपको अक्षुण रख पाना एक बड़ी चुनौती है. हमें ख़ुशी है कि पिछले आठ-दस महीनों में हमारे साथ अनेक नये लेखक जुड़े हैं, साथ ही ५०-६० नये आजीवन सदस्य बने हैं. बहुत अच्छा लगता है जब किसी दूर-दराज़ के छोटे क़स्बे के किसी व्यक्ति का आजीवन सदस्यता का मनीऑर्डर आता है. न अच्छे लेखकों की कमी है और न ही अच्छी रचनाओं के पढ़ने वाले पाठकों की. इसी संदर्भ में, इस वर्ष मासिक पत्रिका "नया ज्ञानोदय" ने जो इतिहास बनाया उसका उल्लेख करना यथोचित होगा. जुलाई से अक्तूबर तक "नया ज्ञानोदय" ने चार प्रेम विशेषांक निकाले जिन्हें हाथों-हाथ लिया गया, यहां तक कि प्रत्येक विशेषांक के कई संस्करण निकालने पड़े.

इस अंक में "सागर-सीपी" स्तंभ नहीं जा पाया है. दरअसल, साक्षात्कर्ता ने कुछ और समय चाहा था किंतु इससे अंक में अतिरिक्त विलंब हो रहा था. दोनों ही "आमने-सामने" और "सागर-सीपी" स्तंभों की रचनाएं पर्याप्त सराही जाती हैं. पत्रिका में प्रकाशित "आमने-सामने" स्तंभ में महिला लेखिकाओं के आत्मकथ्य शीघ्र ही एक पुस्तक के रूप में उपलब्ध होंगे.

इस अंक में, **"कमलेश्वर-स्मृति कथाबिंब पुरस्कार"** का अभिमत पत्र पृष्ठ-४८ पर प्रकाशित है. पाठकों से आग्रह है कि अधिक से अधिक संख्या में प्रतियोगिता में भाग लें. **"संस्कृति संरक्षण संस्था"** द्वारा २७ फरवरी २०१० को विवेकानंद कला, विज्ञान व वाणिज्य महा-विद्यालय, सिंधी सोसायटी, चेंबूर (मुंबई) में, सुबह ९.३० बजे **"चिकित्सा की वैकल्पिक पद्धतियां, निदान व उपचार"** विषय पर एक एक-दिवसीय संगोष्ठी आयोजित की जा रही है. इसकी जानकारी भी अंक में अन्यत्र दी गयी है. संगोष्ठी में स्थानीय पाठकों की किसी भी प्रकार की भागीदारी का स्वागत है.

●

अब कुछ इस अंक की कहानियों के बारे में – अपनी कहानी *"लौटना"* में सुशांत सुप्रिय पाठकों को एक अलग दुनिया के अनुभव कराते हैं. एक ऐसी दुनिया जहां से लौटकर आना मुमकिन नहीं है किंतु कभी-कभी जब सारे डॉक्टरी उपाय समाप्त हो जाते हैं तो केवल प्रार्थना ही अपना काम करती है. अगली कहानी *"कभी-कभी मेरे दिल में ..."* (संजीव निगम) एकदम अलग मिज़ाज की कहानी है जिसे पढ़कर, संभव है, अनेक पाठकों के मन में अपने कॉलेज के दिनों की याद ताज़ा हो आये. नज़्म सुभाष कतिपय नये लेखक हैं. वे अपनी कहानी *"भेड़िए"* के माध्यम से एक कबीले में चली आ रही सदियों पुरानी कुरीति को सामने रखते हैं. कहानी की नायिका बुधिया इस कुरीति का पुरज़ोर विरोध करती है और अंततः एक परिवर्तन लाने में सफल होती है. महेश कटारे "सुगम" की कहानी *"मुक्ति"* उन स्थितियों का बयान है जिनमें हमारे देश के अधिकांश सामान्य शिक्षित युवक अपने आपको आज पा रहे हैं. ऐसी डिगरियां प्राप्त करके क्या लाभ जो पेट की आग को ठंडा करने के काम न आ सकें? कहानी *"अपराधबोध"* (नरेंद्र कौर छाबड़ा) एक ऐसी मां की कहानी है जिसने परिवार की परंपरा के चलते विवशतावश बेटियों को संसार में आने से रोका किंतु वृद्धावस्था में जब पुत्रों ने मां की सुध न ली तो वह भ्रूण-हत्या के अपराधबोध से ग्रसित हो जाती है.

●

आइए अब देश की राजनीति पर कुछ दृष्टिपात करें. भारत विश्व का सबसे बड़ा जनतांत्रिक देश है. अमरीका का नंबर बाद में आता है. विश्व की २० प्रतिशत आबादी भारत भू-भाग में रहती है और अमरीका में मात्र ५ प्रतिशत. जनतंत्र – यानी जनता द्वारा, जनता के लिए, जनता का राज्य. २६ जनवरी २०१० को भारतीय गणराज्य और संविधान के ६० वर्ष पूरे हो रहे हैं. सब तरफ जश्न की तैयारियां हैं. सवाल है कि हम किस बात का जश्न मनायें ? स्वतंत्रता प्राप्ति के समय जिस भारत का स्वप्न हमने देखा था वह कहां है ? संयुक्त राष्ट्र विश्व खाद्य कार्यक्रम द्वारा जारी की गयी ताज़ा रिपोर्ट के अनुसार भारत विश्व भूख सूचनांक में अफ्रीका के २५ देशों से भी नीचे ६६ वें स्थान पर है. भारत में ८३.७ करोड़ (यानी ७७ प्र. श.) लोगों की आमदनी २० रु. से भी कम है. इससे एक किलो आटा और पाव भर दाल ख़रीदना भी संभव नहीं है. ये आंकड़े बहुत चौंकाने वाले हैं. आज़ादी के समय देश की जितनी जनसंख्या थी आज उससे दुगने से कुछ अधिक लोग ग़रीब हैं. भारत सरकार के अलग-अलग विभाग यही नहीं तय कर पाते हैं कि ग़रीबी की रेखा कहां खींची जाये ? किसी भी सरकार की सर्वप्रथम प्राथमिकता यही होनी चाहिए कि लोग भूख से न मरें. लेकिन केंद्र राज्यों पर ज़िम्मेदारी डालता है और राज्य केंद्र पर. कृषि मंत्री का कभी बयान आता है कि

शक्कर के दाम और बढ़ सकते हैं, कभी वे कहते हैं कि दूध के दामों के बढ़ने की संभावना है. क्या उन्हें इस बात का कतई भान नहीं कि ऐसे बयान जमाखोरों और मुनाफेबाजों को बढ़ावा देते हैं ! पेट्रोलियम मंत्री भी बीच-बीच में दाम बढ़ाने की बात कहने लगते हैं. उधर गृहमंत्री का बयान आता है कि ९० प्र. श. हमें अपने भाग्य को धन्यवाद देना चाहिए कि वर्ष २००९ में आतंकवाद की कोई बढ़ी घटना नहीं घटी ! कॉन्ग्रेस के उत्तर प्रदेश के प्रभारी आजमगढ़ जाकर कहते हैं कि बाटला एन्कॉउंटर की जांच होनी चाहिए. ऐसे बयानों से क्या पुलिस फोर्स का मनोबल प्रभावित नहीं होगा? पर महाराष्ट्र के मुख्यमंत्री एक दिन कहते हैं कि उन्हीं टैक्सी चालकों को लाइसेंस मिलेगा जिन्हें मराठी आती है लेकिन दूसरे दिन ही अपना बयान बदल देते हैं. मुझे समझ ही नहीं आता कि कौन सरकार चला रहा है - गृहमंत्री, विदेश मंत्री, कृषि मंत्री, सोनिया गांधी, राहुल गांधी या फिर शायद मनमोहन सिंह जी?

यदि हम खेलों की बात करें तो वहां भी गेंद झट से एक पाले से दूसरे में डाल दी जाती है. हाल ही में, ख़राब पिच के कारण देश की राजधानी के फ़िरोज शाह कोटला मैदान में भारत-श्री लंका के बीच पांच दिवसीय क्रिकेट मैच एक दिन के बाद रद्द कर देना पड़ा. किसी भी बड़े पदाधिकारी का सिर शर्म से नहीं झुका, न ही किसी ने इसकी ज़िम्मेदारी ली. सुनने में आया है कि एक वर्ष तक इस मैदान में कोई बड़ा मैच नहीं होगा! दिल्ली में होने वाले कॉमनवेल्थ खेलों की तैयारी को लेकर भी घींगामुश्ती होती है. आई पी एल के आयोजक भी अपनी ढफली, अपना राग ले कर अज़ब तमाशा करते हैं. पिछले वर्ष दूसरे आई पी एल का आयोजन दक्षिणी अफ्रीका ले गये. गृहमंत्री लाख कहते रह गये कि कोई ख़तरा नहीं है, कड़ी सुरक्षा मुहैय्या करायी जायेगी. इस साल पाकिस्तानी खिलाड़ियों को लेकर व्यर्थ का बबाल मचा हुआ है. खिलाड़ियों की नीलामी के समय पाकिस्तानी क्रिकेट खिलाड़ियों के नाम भी थे और उन पर दाम भी लगे थे, तो फिर आठों टीमों के मालिकों ने एक भी पाकिस्तानी खिलाड़ी को क्यों नहीं लिया. क्या ललित मोदी के कहने पर! क्या इन अरबपतियों की दृष्टि में देश की प्रतिष्ठा का कोई अर्थ नहीं है. पाकिस्तान से हमारे संबंध अच्छे हों, इसके लिए सरकार अलग-अलग स्तरों पर भरसक प्रयास करती रहती है. पर इस एक बात से एक बार फिर गाड़ी पटरी से उतर गयी है.

दरअसल देखा जाये तो हम किसी भी चीज़ को लेकर गंभीर नहीं हैं. प्लास्टिक की थैलियों का उपयोग बंद होना चाहिए यह सब कहते हैं. किंतु कैसे ? यह किसी को नहीं मालूम. थैलियों की मोटाई कितनी हो इसको लेकर बहसें होती रहती हैं. नियम बनते हैं, छापे मारे जाते हैं. पर सब कुछ बदस्तूर चलता रहता है. इधर हमारे "नेताओं" के जन्मदिन मनाने की नयी परंपरा शुरू हुई है. अचानक पूरे शहर के खंभों पर और अनेक स्थानों पर जन्म दिन की शुभकामनाएं देते हुए प्लास्टिक पर छपे पोस्टर लग जाते हैं. यह नेता गली का हो सकता है, केंद्र का या कोई महान "दिवंगत" नेता. हर दूसरे दिन चारों ओर नये पोस्टर लगे दिखायी देते हैं. इसके अलावा भी हर धर्म के त्यौहारों पर जनता को विभिन्न राजनीतिक पार्टियां शुभकामना संदेश देने में भी नहीं चूकतीं. यह सही है कि कंप्यूटर की सहायता से ऐसे पोस्टर बनाना आसान हो गया है लेकिन एक-एक पोस्टर ३०० से १००० रु. का बनता है. यह पैसा कहां से आता है? और फिर उपयोग के बाद प्लास्टिक का क्या होता है, वह कहां जाती है ? इस पर रोक क्यों नहीं लगती?

●

कुछ दिन पूर्व एक बार फिर अलग तेलंगाना राज्य की मांग ज़ोर-शोर से उठायी गयी. राजेश्वर राव के आमरण अनशन से मामला और गरमाया. आख़िर केंद्र ने एक समिति गठित की और मामला आगे टल गया. इसके साथ ही उत्तर प्रदेश को भी कई छोटे-छोटे राज्यों में विभाजित करने की बातें होने लगी हैं. साथ ही विदर्भ को महाराष्ट्र से अलग करने के लिए भी कई जगह प्रदर्शन हो रहे हैं. कुछ पार्टियां समर्थन में हैं और कुछ विरोध कर रही हैं. जब किसी कारण से राज्य का कोई हिस्सा विकास में पिछड़ जाये तभी इस तरह की मांगें सामने आती हैं. छोटे राज्यों का शासन ठीक चलेगा इसकी भी कोई गारंटी नहीं है. झारखंड, गोवा और उत्तर-पूर्व के कुछ राज्यों के उदाहरण सामने हैं. दो-चार सदस्यों के पाला बदलने से सरकार अल्पमत में आ जाती है. इस सब की जड़ में, मुख्य बात भाषाओं के आधार पर राज्यों के निर्माण की मांग को पूर्व में, स्वीकृति देना है. इसी तरह से आरक्षण को हर दस वर्ष के लिए आगे मान्यता देने की बात भी है. चाहें हमारी भाषा नीति हो या शिक्षा नीति सबमें परिवर्तन की आवश्यकता है. किसी भी देश के लिए ६० साल का समय कम नहीं होता. इस मुहाने पर पहुंचने पर हमें पीछे देखना चाहिए कि अब तक चली आयी नीतियों में क्या संशोधन आवश्यक हैं. पक्ष, विपक्ष दोनों साथ बैठें और दलगत राजनीति से ऊपर उठकर सभी पहलुओं पर विचार करें. भाषा का आधार ख़त्म करके भौगोलिक स्थितियों के अनुसार राज्यों को पुनर्गठित करके एक नये भारत का पुनर्उत्थान आज समय की मांग है.

अरविंद

लेटर बॉक्स

❖ 'कथाबिंब' का १०७ वां अंक दत्तचित्त हो पढ़ा. सुख मिला. कहानियों का स्तर, उनकी संवेदना, उनका शिल्प-सौंदर्य - सब कुछ अदभुत.

समसामयिक समस्याओं से रूबरू होती आपकी 'कुछ कही, कुछ अनकही' ऐसे अनेक प्रश्नों पर उंगली उठाती है जिनका हमारे शासकों के पास कोई उत्तर नहीं है और जिनसे सीधे हमारा जन-जीवन प्रभावित होता है. 'पद्मपतियों' की जूठन पर हजारों, करोड़ के स्वामी बन चुके राजनेता कभी नहीं चाहेंगे कि महंगाई पर रोक लगे, क्योंकि ये इन धन पशुओं से पिछले चुनाव में ही अकूत राशि ले चुके हैं. अब व्यापारी उसकी क्षतिपूर्ति जनता से कर रहे हैं. आज इस 'साम्राज्यवादी प्रजातंत्र' में जनता की स्थिति कसाई के काठ और कटार के बीच बलिपूर्व कांपती गाय जैसी है. इन डकैत देशद्रोही राजनेताओं ने इसकी पूरी व्यवस्था कर ली है कि इनके पुष्पित नंदन-वन पर कोई कहीं न डाका डाले. इन 'अजगरों' के गुंजलक में हमारी जिजीविषा तड़प रही है, रास्ता नहीं मिल रहा है. एक नपुंसक आक्रोश दबाये लोग जी रहे हैं, प्रतिरोधी क्षमता का लोप हो गया है. यह उदासीनता शासक की निरंकुशता से ज़्यादा भयावह है. लेखक को कलम त्याग जन-जागरण के लिए आगे आना होगा. कुछ 'भगतसिंह' तैयार करना होगा, तभी इन काले अंग्रेजों से निजात मिलेगी.

अब कुछ कहानियों पर... पहली कहानी 'पांच मुट्ठी मिट्टी' ने हिला कर रख दिया. बेजोड़ शिल्प, कथ्य पुराना होते हुए भी ताज़गी का एहसास कराता, भाषा में प्रवाह, सधे-संवरे संवाद, एकदम अपनी-सी लगती कथा. तीन पीढ़ियों - गौरीशंकर जी, रामनिवास व अखिल के सोच, उनके मनोभावों का प्रतिबिंब है यह कथा. फ्रायड-मार्क्स को अपना आदर्श माननेवाली आज की 'शिश्नोदरी' पीढ़ी की दृष्टि में 'सरोवर' तो क्या, आदमी भी एक जिन्स-मात्र है, जिसे भुना लेने की त्वरा है उसके भीतर. भारतीय आदर्शों, जीवन मूल्यों को कंजूस के धन की तरह अपने हृदय में धारण किये बाबा के लिए सरोवर मात्र जलाशय नहीं है, वह उनकी संवेदना का हिस्सा है. कथाकार डॉ. निरुपमा राय को कोटिशः बधाइयां.

दूसरी कहानी मैंने पढ़ी- 'अंगीठी'. कहानी आद्यंत पाठक को अपने अनूठे शिल्प-सौंदर्य से बांधे रखती है. हिमाचल की हाड़ कांपती ठंड और पुरुषहीन परिवार की असुरक्षित भयावह ज़िंदगी और दोनों से जूझने का असीम आत्मविश्वास लिये दो ज़िंदगियां. दोनों एक दूसरे का सहारा, एक दूसरे का खालीपन भरते हुए. एक सामान्य-सी (आज के संवेदनहीन आभिजात्य वर्ग के लिए) घटना, जो नित्य अख़बार की सुर्खी बनती है, को बड़े कौशल से कथा के सुंदर शिल्प में ढाल दिया है 'मीरा' जी ने. 'कप वाली आइसक्रीम' इस भ्रष्टाचारी युग में एक ईमानदार सरकारी कर्मचारी की कचोटने वाली भावुकतापूर्ण कथा है. कहीं-कहीं अतिरंजित अवश्य हो जाती है. 'एक्सीडेंट' एक अमीर के ईमानदार भाई के करुण अंत की कथा कहती है जो भाई से ली गयी सहायता राशि को - जिसे लौटाने का कोई औचित्य नहीं है, ईमानदारी पूर्वक आता है साइकिल से. साइकिल अनियंत्रित ट्रैफिक के चलते बस की चपेट में आ जाती है और उसका प्राणांत हो जाता है. आम आदमी की नेकनीयती की मिसाल!

'आमने-सामने' में कपिल कुमार जी की अपने अक्स से बातचीत अच्छी लगी. यह उनके लंबे संघर्ष व विविध आयामी व्यक्तित्व के पड़ावों को दर्शाती है. इसी तरह 'सागर-सीपी', 'हारे को हरिनाम' कहावत को चरितार्थ करती, वरिष्ठ गीतकार भारत भूषण की ज़िंदगी के 'प्रेय' व 'श्रेय' दोनों पक्षों के बीच संतुलन स्थापित करती लंबी संघर्ष-यात्रा का इतिवृत्त प्रस्तुत करती है. दोनों वरिष्ठ कवि आज की पीढ़ी के कवियों के लिए, जो चंद कविताएं लिखकर मीडिया की सुर्खियों में छा जाने को आकुल दिखते हैं, एक उदाहरण प्रस्तुत करते हैं. आज का कवि मीडियावालों को दारू-मुर्गा परोसने व पुरस्कार के लिए नौकरशाहों के तलवे चाटने में तनिक संकोच नहीं कर रहा है. एक 'शॉर्ट कट' तरीका, खोखली कीर्ति जिससे न साहित्य का भला होना है,

न ही उस टटपूंजिया कवि का. मधु प्रसाद का गीत पढ़कर सुख मिला. गीत के मुखड़े की एक मात्रा टेक से अधिक है- २२ की जगह २३. प्रवाह बाधित होता है.

शिवमूर्ति सिंह

डी-११, पी. डब्ल्यू. डी. फ्लैट, अलोपीबाग, इलाहाबाद-२११००६

❖ 'क'थाबिंब' जुलाई-सितं.०९ अंक प्राप्त हुआ. संपादकीय विचारणीय है कि ई-पत्रिकाएं पूरक तो हो सकती हैं पर विकल्प नहीं. यह सच भी है, लेटर बॉक्स गवाह है कि आज भी लेखक-पाठक दूर-दूर से अपने शब्दों को पन्नों में पिरोकर 'कथाबिंब' के माध्यम से जन-जन तक अपनी बातों का आदान-प्रदान करते हैं. आमने-सामने में कपिल कुमार जी का आत्मकथ्य बहुत अच्छा लगा. उनके बारे में काफ़ी नयी जानकारियां मिलीं. सविता बजाज को हमेशा एक नये तेवर में पढ़ना अच्छा लगता है. 'सागर-सीपी' में भारत भूषण जी का कथन दिल को छू गया कि 'जब मैं लालकिले के कवि सम्मेलन से लौटता हूं और शारदा को झाड़ू लगाते देखता हूं तो अपने आप को कितना छोटा महसूस करता हूं.' लगभग सभी कहानियां अच्छी हैं. डॉ. निरुपमा राय की कहानी 'पांच मुट्ठी मिट्टी' आज की समस्या ग्लोबल वार्मिंग की दृष्टि से विचारोत्तेजक है. ग़ज़लें और कविताएं सुंदर और भावपूर्ण हैं.

सुमीता केशवा

क्रिमसन टॉवर, आकुर्ली रोड, लोखंडवाला, कांदिवली (पू), मुंबई-४००१०१

❖ आ'कर्षक कलेवर में जुलाई-सितं.०९ का अंक प्राप्त हुआ. एक ही दिन में आद्योपांत पढ़ गया. यह पत्रिका की ख़ूबी है जिसे जी भरकर पढ़ने को जी चाहे. संपादकीय की एक लाइन, 'संवेदनशीलता के साथ ही रचनाकार के पास पैनी दृष्टि का होना भी अति आवश्यक है'- से मैं पूरी तरह सहमत हूं. कहानियों में 'पांच मुट्ठी मिट्टी' ने प्रभावित किया. वृद्धों की पारिवारिक अवहेलना आज आम है. उनसे मानसिक अलगाव ही उनकी परेशानी का सबब है. अलबत्ता सिद्धेश्वर की कहानी 'कप वाली आइस्क्रीम' से असहमत भी. एक ईमानदार टी.सी. अपने बच्चों को 'कप वाली आइसक्रीम' नहीं खिला सकता यह बात कितनी अविश्वसनीय है. टी.सी. की तनख्वाह कितनी है हर कोई जानता है. अजी! केंद्र का ग्रुप डी कर्मचारी कम से कम दस हजार तनख़्वाह पा रहा है. अपना यौन शोषण करनेवाले से मन्नी का एक योजनाबद्ध तरीके से बदला लेना ज़रूर उसकी बौद्धिक चेतना का परिचायक है. न जाने कितनी लड़कियां इस घिनौनेपन का शिकार हो जाती हैं और घुट-घुट कर रोती हैं. मन्नी कहीं इनसे अलग खड़ी दिखाई देती है. हिम्मत आयी और आतताई की अंगीठी से ही उसकी जान गयी. किसी को असल क्या है का पता ही न चल सका.

इस अंक के लेटर बॉक्स के कुछ ख़तों पर ध्यानाकर्षित करा रहा हूं. 'इस शुभेच्छा के बावजूद मुझे कहना पड़ रहा है कि इस अंक की सारी कहानियां कमजोर हैं (केशव शरण) तथा 'एक थी हसीना' में साहित्यिकता न होने के बावजूद कुछ है जो हमें सोचने को विवश करती है (राजेंद्र वर्मा). पत्रिका के पाठकों को भी ध्यान देना चाहिए कि क्या यह युक्तिसंगत लिखा होगा.

कुंवर प्रेमिल

एम.आई.जी-८, विजयनगर, जबलपुर (म.प्र)-४८२००२

❖ 'क'थाबिंब' का जुलाई-सितं. ०९ का अंक प्राप्त हुआ. आपके संपादन में शब्दशिल्पियों की यह पत्रिका पिछले तीस वर्षों से सफलतापूर्वक साहित्य जगत में अपनी आभा बिखेरती हुई अच्छी पठनीय, उत्कृष्ठ सामग्री उपलब्ध करवाती आ रही है. पूर्व अंकों की भांति इस बार का संपादकीय भी सार्थक विमर्श के कितने ही आयाम खोलता है तथा समसामयिक ज्वलंत समस्याओं का मंथन कर बाज़ारवादी संस्कृति एवं सामाजिक-राजनीतिक जीवन के गिरते मूल्यों को निर्भीकतापूर्वक उजागर करता है. ज्वलंत प्रश्नों पर जन-मानस को उद्वेलित करता है, झकझोरता है, और सोचने को बाध्य करता है.

डॉ. निरुपमा राय की कहानी 'पांच मुट्ठी मिट्टी' दो पीढ़ियों के बीच पनपी सांस्कृतिक मूल्यों की शून्यता तथा परिवारों में उतर रही विघटनता को रेखांकित करती है. सिद्धेश्वर की कहानी 'कप वाली आइसक्रीम' मनोवैज्ञानिक धरातल पर बालमन के कितने ही मार्मिक चित्रों को उकेरती है. विजय कुमार 'विकुज' की कहानी आज के अर्थप्रधान युग में परिवारों तथा भाइयों के बीच पनप रही संवेदनहीनता के सच को उभारती है.

'मुखबिर' तथा 'अंगीठी' कहानियां भी चटकती हुई आर्थिक स्थिति और बिखरते मूल्यों की तस्वीर पेश करती हैं. इस अंक की लघुकथाएं भी आसपास के परिवेश में उभरी विसंगतियों को उभारती हैं. 'सागर-सीपी' में प्रतिष्ठित गीतकार भारत भूषण से कवियित्री मधु प्रसाद से सार्थक बातचीत अंक को गरिमा प्रदान करती है. 'वातायन' के अंतर्गत क्रांतिकारी श्री सुखदेव राज द्वारा लिखित पुस्तक 'क्रांति के सपूत' के कुछ अंश पत्रिका में प्रकाशित किये गये हैं. साथ ही राजकमल प्रकाशन द्वारा इस पुस्तक का अनुचित एवं गैरकानूनी ढंग से प्रकाशन का उल्लेख भी किया गया है. यह सचमुच आश्चर्य में डालनेवाला है. सामग्री चयन तथा आवरण से लेकर भीतर की साज-सज्जा तक में संपादकीय कौशल की झलक दिखाई देती है. अच्छी स्तरीय, रोचक एवं पठनीय सामग्री पाठकों तक पहुंचाने का श्रेष्ठ कार्य जारी रहेगा, ऐसी अपेक्षा है.

डॉ. सुरेंद्र गुप्त

आर.एन-७, महेश नगर,
अंबाला छावनी (हरियाणा)-१३३००१

❖ 'कथाबिंब' का जुलाई-सितं. ०९ अंक भी पूर्वांकों की तरह ही बेहतरीन आकर्षक साज-सज्जा के साथ लगभग हर विधा की अनुपम साहित्यिक सामग्री को समेटे हुए है. आपका संपादकीय तो ख़ास तौर पर काबिले तारीफ है. आपने साहित्य और राजनीति के सभी विषयों पर कलम चलाई है. चुनावी दांवपेंच तो आज की मानो सर्वमान्य परंपरा हो गयी है. दलगत राजनीति ने समाज और मानव के संबंधों में दरारें पैदा कर दी हैं. राजनेता कभी धर्म, कभी नारी-विमर्श और कभी दलित के प्रश्नों को लेकर दंगे कराकर तनावों में वृद्धि कराते हैं. ग़रीबी, बेरोज़गारी, भ्रष्टाचार कम होने के बदले बढ़ते जा रहे हैं. क्रिकेट का खेल तक व्यापारीकरण की राह पर चल पड़ा है. जो भी है शोषण तो जनता का ही होता है. इन तमाम तथ्यों को आपने अपने संपादकीय में राष्ट्र ही नहीं अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर समेट लेने का सफल प्रयास किया है.

डॉ. सूर्यदीन यादव

३, पुनीत कॉलोनी, पवन चक्की रोड,
नाडियाद, जि. खेडा (गुज.)-३८७००२.

❖ 'कथाबिंब' के जुलाई-सितं. ०९ अंक की संपादकीय टिप्पणी में आपने अन्य कई महत्वपूर्ण विषयों के साथ नक्सलवाद की विभीषिका को भी उठाकर अच्छा किया. इस समस्या को सरकारी तंत्र अपने ढंग से हल करने का प्रयत्न करे. साहित्यकारों का भी यह धर्म हो जाता है कि इस समस्या पर गहन मनन-चिंतन करें और अपनी वैचारिक तथा भावनात्मक रचनाओं द्वारा इसे समझने और समझाने में सहयोग दें. जैसे छायावादी युग में कविवर सुमित्रानंदन पंत ने लेखकों से अनुरोध किया था- 'ता को, भू को.' केवल मार्क्सवादी दृष्टि से ही नहीं, गांधीवादी दृष्टि से भी समस्या का विश्लेषण करने की चेष्टा करें.

के. जी. बालकृष्ण पिल्लै,

गीता भवन, पेरुरकटा, पो. तिरुअनंतपुर-५

❖ 'कथाबिंब' अंक १०७ पढ़ा. तमाम कठिनाइयों के बावजूद सौ अंक निकालने के लिए 'कथाबिंब' परिवार को बधाई! उक्त अंक में 'पांच मुट्ठी मिट्टी' के बारे में आपने जो कुछ लिखा उसे पढ़कर सबसे पहले वही कहानी पढ़ी किंतु जरा बोर हुआ क्योंकि 'नया ज्ञानोदय' पानी विशेषांक-२००४ में छपी जयनंदन की मशहूर चर्चित कहानी 'कल्याण का अंत' की याद दिला गयी. न विषय नया, न ही भाव. 'एक्सीडेंट' में 'काकू-काकू', 'भीड़ के फांक' जैसे शब्दों के प्रयोग तथा 'हिलसा' मछली व 'मिठाई' के प्रति उत्साह से पता चलता कि लेखक पक्का कोलकातावासी है किंतु उनकी कहानी का एक पात्र का कहना, 'कोलकाता के बस वाले तो किसी की जान की परवाह नहीं करते,' सत्य से परे है. ऐसा कोई बाहरी व्यक्ति ही कह सकता है. कोलकाता, वाशिंदा 'भावनात्मक रूप से संवेदनशील' होता है. कोलकाता की भीड़ में भी अनुशासन है. एक्सीडेंट्स भी कम. ख़ैर, 'एक्सीडेंट' कहानी मुझे अच्छी लगी. 'आइसक्रीम' कहानी में छोटी सी बात बहुत अच्छे ढंग से कही गयी है. 'सागर-सीपी', 'आमने-सामने' स्तंभ की रचनाएं अच्छी लगीं.

एक बात पर कृपया विचार करें- फोटो के साथ परिचय के बहाने लोग 'सेल्फ-अप्रेजल' देने लगे हैं. विज्ञापननुमा परिचय के स्थान पर संक्षिप्त परिचय जैसा 'पाखी' पत्रिका में आने लगा है देने पर विचार करें. रचनाएं रचनाकार का परिचय दें तो ही बेहतर.

सुभाषचंद्र गांगुली

एस-६, पंचपुष्प अपार्टमेंट,
४१७, अशोक नगर, इलाहाबाद-२११००१

कहानी

लौटना

समुद्र का रंग आकाश जैसा था. वह पानी में तैर रही थी. छप-छप, छप-छप. उसे तैरना कब आया? उसने तो तैरना कभी नहीं सीखा. फिर यह क्या जादू था? लहरें उसे गोद में उठाये हुई थीं. एक लहर उसे दूसरी लहर की गोद में सौंप रही थी. दूसरी लहर उसे तीसरी लहर के हवाले कर रही थी. सामने, पीछे, दायें, बायें दूर तक फैला समुद्र था. समुद्र ही समुद्र. एक अंतहीन नीला विस्तार.

''सिस्टर, रोगी का ब्लड-प्रेशर चेक करो.'' पास ही कहीं से आता हुआ एक भारी स्वर.

''डॉक्टर, पेशेंट का ब्लड-प्रेशर बहुत 'लो' है.''

''सिस्टर, नब्ज़ जांचो.''

''नब्ज़ बेहद धीमी चल रही है, सर.''

लहरें नेहा को समुद्र की अतल गहराइयों में लिये जा रही हैं. वह लहरों पर सवार हो कर नीचे जाती जा रही है. नीचे. और नीचे. वहां जहां कोई गोताखोर पहले कभी नहीं जा पाया. कमाल की बात यह है कि उसके पास कोई ऑक्सीजन-सिलिंडर नहीं है. नीचे समुद्र का तल सूरज-सा चमक रहा है. उसे अपने पास बुला रहा है. उसे आगोश में लेना चाह रहा है. आह! समुद्र का जल कितना साफ़ है. कितना स्वच्छ है. कितना पारदर्शी.

नर्सें और डॉक्टर आपस में बातें कर रहे हैं.

''सिस्टर, क्या पेशेंट यूरिन पास कर रही है?'' एक भारी स्वर पूछ रहा है.

''नहीं, डॉक्टर.'' दूसरा मुलायम स्वर जवाब दे रहा है.

पानी में बुलबुले उठ रहे हैं. नेहा बुलबुलों के जाल में कैद होती जा रही है. बुलबुलों के भीतर आवाज़ें बंद हैं जो उनके फूटते ही फैलती जा रही हैं.

रोगी के चारों और डॉक्टरों और नर्सों की टोली जमा है. उसकी पलकें उठा कर आंखों में टॉर्च की रोशनी मारी जा रही है.

''डॉक्टर, इसे सांस लेने में तकलीफ़ हो रही है.'' वही मुलायम स्वर.

समुद्र का तल नेहा को अपने पास बुला रहा है. वह तेज़ी से गोता लगाती हुई नीचे की ओर जा रही है. पर तल पास क्यों नहीं आ रहा?

''डॉक्टर, रोगी की हार्ट-बीट सही नहीं आ रही.'' वही मुलायम आवाज़ समुद्र की लहरों में डूब-उतरा रही है.

नेहा बेहद थक गयी है. वह देर तक सोना चाहती है. उसकी आंखें मुंद रही हैं. उसके हाथ-पैर शिथिल होते जा रहे हैं. उसे ऐसा लग रहा है जैसे किसी ने उसके सीने पर एक बड़ा-सा पत्थर रख दिया हो. उसके चारों ओर एक मनहूस अंधेरा छाता जा रहा है. अचानक यह काली रात कहां से आ गयी है? ये चांद और सितारे कहां छिप गये हैं? उसकी सांसें क्यों उखड़ रही हैं?.....

// शुशांत शुप्रिय //

''डॉक्टर, शी इज़ सिंकिंग.''

''सिस्टर, पुट हर ऑन लाइफ़-सपोर्ट सिस्टम. क्विकली.'' भारी स्वर जैसे बहुत दूर से यह कह रहा है.

□

और फिर अचानक चारों ओर उजाला हो जाता है. नेहा समुद्र-तल पर पहुंच गयी है. वहां सब कुछ चमक रहा है. जगमग-जगमग. उसे अब शरीर में कोई दर्द महसूस नहीं हो रहा. यह क्या जादू है? वह अपने दर्द से मुक्त कैसे हो गयी? उसकी थकान अचानक कैसे दूर हो गयी? नेहा कुछ नहीं समझ पा रही है. चारों ओर रोशनी के असंख्य पुंज जगमगा रहे हैं. वह उन्हें छूना चाहती है. उन्हीं में से एक पुंज बन जाना चाहती है. क्या असीम आकर्षण है उनमें. यह क्या? रोशनी के पुंज जानी-पहचानी शक्लों में बदल रहे हैं.

''मां? बाबूजी? आप यहां? पर आप तो कई साल पहले चल बसे थे? आप दोनों मुझे छोड़कर यहां क्यों चले आये? आप दोनों के जाने के बाद मैं कितना रोयी थी.....''

''आ जा, बेटी, आ जा. अब तू हमारे साथ रहेगी....''

व्हेल मछलियां नाच रही हैं.

शार्क मछलियां गीत गा रही हैं.

समुद्री कछुए भी गुनगुना रहे हैं.

''तुम हममें से एक हो.......''

लहरें नेहा को सीने से लगाकर थपकियां दे रही हैं.

लहरों के बीच प्रकाश-पुंज सी मां मुस्करा रही है. लहरों के बीच प्रकाश पुंज से पिता हाथ हिला कर पास बुला रहे हैं. पिता का सीना आकाश जितना बड़ा है. मां की मुस्कान धरती जितनी बड़ी है.

''मैंने आप दोनों को बहुत ढूंढ़ा.''

''अपने भीतर ढूंढ़ा, बिटिया?''

नेहा मां का आंचल पकड़ कर चबा रही है. पिता का आशीष भरा हाथ उसके सिर पर है. वह फिर से छोटी बच्ची बन गयी है. पिता ने उसे गोद में उठा लिया है. पिता की गोद में समुद्र की लहरें भरी हैं. पिता की गोद में रंग-बिरंगी मछलियां तैर रही हैं. नेहा उन लहरों में छप-छप कर रही है.

□

''केस बिगड़ रहा है.'' वही भारी आवाज़ फिर से चेतना के दरवाज़े पर दस्तक दे रही है.

''मां, तुम कितनी सुंदर लग रही हो. बाबूजी, आप कितने बांके लग रहे हैं.''

''धत, पगली......''

आइ.सी.यू. के बाहर नेहा का पति भुवन और दूसरे सगे-संबंधी बेचैनी से चहलकदमी कर रहे हैं.

कुछ नर्सें और एक डॉक्टर आइ. सी. यू. से निकल कर तेज़ी से चलते हुए जा रहे हैं.

''क्या हुआ, डॉक्टर साहब?'' भुवन की आवाज़ में चिंता है.

''पेशंट इज क्रिटिकल. बट वी आर ट्राइंग अवर बेस्ट. प्रे फ़ॉर हर.''

भुवन दोनों हाथ जोड़ कर गायत्री मंत्र का जाप करने लगा है :

बी.ए.(अंग्रेजी) ऑनर्स, एम.ए.(अंग्रेजी), एम.ए.(भाषा विज्ञान), एम.फिल (अंग्रेजी)

प्रकाशन : प्रतिष्ठित पत्र-पत्रिकाओं में कविताएं, कहानियां व अनुवाद-कार्य प्रकाशित. कविताएं व कहानियां पुरस्कृत, कई भाषाओं में अनूदित तथा आकाशवाणी दिल्ली से प्रसारित. 'कथाबिंब' द्वारा आयोजित कमलेश्वर स्मृति कथा पुरस्कार २००८ में सर्वश्रेष्ठ कहानी पुरस्कार प्राप्त.

विशेष : डी.ए.वी.कॉलेज, जालंधर, में कुछ वर्ष (अंग्रेजी) व्याख्याता (१९९४-९६).

रुचि : गायन, शतरंज व टेबल-टेनिस का शौक. स्केचिंग में भी रुचि.

संप्रति : सरकारी सेवा में उच्चाधिकारी

''ऊं भूर्भुवः स्वः तत्स वितुर्वरेण्यं,
भर्गो देवस्य धीमहि,
धियो यो नः प्रचोदयात.''

भुवन के पिता साईबाबा की प्रार्थना कर रहे हैं.......

□

''मां-बाबूजी मैं आप को 'श्रीरामचंद्र कृपालु भजु मन' वाली स्तुति सुनाऊं?'' नेहा कह रही है.

''हां, बेटी. सुनाओ न.''

''श्रीरामचंद्र कृपालु भजु मन हरण भव भय दारुणं।
नवकंज-लोचन, कंज-मुख, कर-कंज, पद कंजारुणं।''

लहरें भी स्वर में स्वर मिला रही हैं. समुद्र के सभी जीव-जंतु हाथ जोड़े एक स्वर में गा रहे हैं......

''कंदर्प अगणित अमित छवि, नवनील-नीरद सुंदरं।''
पट पीत मानहु तड़ित रुचि शुचि नौमि जनक सुतावरं।''

चारों दिशाएं श्री राम जी की स्तुति का गान कर

रही हैं. एक-एक स्वर का उच्चारण स्पष्ट सुनायी दे रहा है.

''...जानि गौरि अनुकूल सिय हिय हरषु न जाइ कहि।
मंजुल मंगल मूल वाम अंग फरकन लगे ।।''

□

''सिस्टर, एनी इंप्रूवमेंट?'' आइ. सी. यू. से बाहर निकल कर तेज़ी से भागी जा रही एक नर्स से भुवन पूछ रहा है.

''प्रार्थना कीजिए.''

भुवन की आंखों में आंसू हैं. किंतु उसके हाथ प्रार्थना की मुद्रा में जुड़ गये हैं. उसके होठ श्रीराम-स्तुति जैसा कुछ बुदबुदा रहे हैं....

□

''....सियावर रामचंद्र की जय।
पवनसुत हनुमान की जय ।
उमापति महादेव की जय ।।''

''बिटिया, तुम्हें अब भी पूरी स्तुति कंठस्थ है. तुम कितनी अच्छी आवाज़ में यह गाती हो.'' मां-बाबूजी नेहा को आशीष दे रहे हैं.

''पिताजी, आपने ही तो बचपन में मुझे यह स्तुति सिखायी थी. याद है, हर रोज़ रात को सोने से पहले आप यह स्तुति हम सबको गा कर सुनाते थे.''

''बेटी, अब तुम हमारे पास रहो. हमें रोज़ यह स्तुति गा कर सुनाना.''

''मां-बाबूजी, मैं आप दोनों से बहुत प्यार करती हूं. मैं यहां रहना तो चाहती हूं पर वहां भुवन और बेटी पिंकी मेरी राह देख रहे होंगे. मुझे लौटना होगा.....''

.....अब लहरें नेहा को कहीं दूर लिये जा रही हैं. यह अंतहीन नीला विस्तार न जाने कहां ख़त्म होगा- वह सोचती है.

□

अरे, यह कैसी सुरंग है. नेहा सुरंग में चलती चली जा रही है. दूसरी ओर तेज़ रोशनी है. वह दूसरी ओर से सुरंग से बाहर निकल आयी है. उसके मुंह से बुलबुले निकल रहे हैं. उसके इर्द-गिर्द ऑक्टोपस और रंग-बिरंगी मछलियां तैर रही हैं. चारों ओर अजनबी प्रकाश-पुंज नज़र आ रहे हैं.

अब नेहा के सामने एक नन्हा प्रकाश-पुंज खड़ा है.

''अरे, पुलक, मेरे लाल. मुझे पता था, तुम मुझे दोबारा मिलोगे, बेटा. सब कहते थे, भगवान ने तुम्हें अपने पास बुला लिया. पर मैंने कभी उम्मीद नहीं छोड़ी थी. आ, अपनी मां के सीने से लग जा, मेरे जिगर के टुकड़े. तू तो मेरा अंश है, बेटा. मैंने नौ महीने तुझे अपनी कोख़ में जिया था. भगवान इतना हृदयहीन कैसे हो सकता था कि एक मां को उसके बच्चे से अलग कर दे. आ जा बेटा, वहां तेरे पापा और बहन पिंकी तेरी प्रतीक्षा कर रहे हैं. मेरे साथ चल, मेरे लाल. आज तेरे चेहरे पर कितना ओज है, बेटा. उस दिन जब स्कूल-बस का पहिया तेरी कमर पर से निकल गया था, तब तेरा गोरा चेहरा कैसे कोयले-सा काला हो गया था. जब वे तुझे मेरे पास लाये थे, तू खून से लथपथ था. दर्द तेरे चेहरे पर पत्थर-सा जम गया था. पर मैं जानती थी, तू केवल गहरी नींद सो रहा था. मैं जानती थी तू जाग कर भला चंगा हो जायेगा. आ जा, मेरे बेटे, अपनी मां के सीने से लग जा. तू कुछ बोलता क्यों नहीं? ये लहरें मुझे तुझ से दूर क्यों लिये जा रही हैं? कोई इन्हें रोको.....अचानक ये धूप कहां चली गयी है? यह अंधेरा गाढ़ा क्यों होता जा रहा है ? कोई मुझे इस बुलबुलों के भंवर से बचाओ....''

□

''डॉक्टर, आप क्या कहते हैं? इज़ देयर एनी होप?'' एक भारी आवाज़ दूसरी आवाज़ से पूछ रही है.

''मरीज़ की हालत बहुत ख़राब है. ज़्यादातर वाइटल-आर्गन्स ने काम करना बंद कर दिया है. अब तो यह केवल वेंटिलेटर के सहारे ज़िंदा है.'' दूसरी खुरदुरी आवाज़ कह रही है.

''बाहर इसके रिश्तेदार प्रे कर रहे हैं.''

''अब शायद प्रार्थना ही कुछ कर सके.''

□

....लहरें नेहा को अब कहीं और ले आयी हैं. आस-पास मौजूद प्रकाश-पुंजों में नेहा को वे कई चेहरे दिख रहे हैं जिन्हें वह जानती थी पर जो बरसों पहले गुज़र चुके थे..... दादा.... दादी....रूनी दीदी.....संजू चाचा....गुन्नो बुआ... रिंकी मौसी.... गली का वह चौकीदार जो बदमाशों से लड़ते हुए मारा गया था....

''हे भगवान, आप सब यहां हैं. और मैं समझ रही थी कि आप सब नहीं रहे. यह कौन-सी जगह है? मैं कहां आ गयी हूं?'' नेहा हैरानी से कह रही है.

''आओ, बिटिया. तुम्हारा स्वागत है. अब तुम हमारे पास रहो. यहां तुम्हें कोई तकलीफ़ नहीं होगी.''

''शुक्रिया. आप सबसे मिलकर मुझे बहुत अच्छा लग रहा है. मैं आप लोगों को कितना मिस करती थी. लेकिन मैं यहां नहीं रह सकती. वहां मेरे पति भुवन और बेटी पिंकी मेरी प्रतीक्षा कर रहे हैं. अगर मैं वापस नहीं गयी तो भुवन और पिंकी की देखभाल कौन करेगा? उनका ख़्याल कौन रखेगा ? पिंकी को हर रोज़ तैयार करके स्कूल कौन भेजेगा ? उसका होम-वर्क कौन पूरा करायेगा ? और असली बात तो यह है कि मैं भुवन और पिंकी के बिना नहीं रह सकती. इसलिए मुझे मत रोकिए. मुझे लौटने दीजिए....''

लहरों पर सवार हो कर नेहा लौट रही है. समुद्र उसे रास्ता दे रहा है. मछलियां, ऑक्टोपस और समुद्री कछुए हाथ हिला कर उसे 'बाय' कह रहे हैं. प्रकाश-पुंजों से मिलकर वह वापस लौट रही है.....

□

''डॉक्टर, देखिए. मरीज़ में हरकत हुई!'' मुलायम आवाज़ पास लौट आयी है.

''अमेज़िंग ! शी हैज़ कम बैक.'' खुरदुरी आवाज़ हैरानी से कह रही है.

''देखिए, रोगी के सारे सिस्टम स्टैबिलाइज़ हो रहे हैं.'' भारी आवाज़ भी अब पास आ गयी है.

''शायद यह प्रार्थनाओं का ही असर होगा. बाहर इसके रिश्तेदारों को बता दो.''

नेहा के थोड़ा ठीक हो जाने के बाद डॉक्टरों ने भुवन को आइ. सी. यू. में आ कर नेहा से मिलने की इजाज़त दे दी है.

''तुम ठीक हो नेहा. डॉक्टर कह रहे हैं अब घबराने की कोई बात नहीं.'' भुवन एक हाथ से नेहा का हाथ थाम कर दूसरे हाथ से उसका माथा सहला रहा है.

''भुवन..... मैं वहां गयी थी.... मैं सबसे मिली थी....मां, बाबूजी, पुलक....सबसे.....''

''क्या कह रही हो नेहा?''

''हां, भुवन.... सारा समय... मैं डॉक्टरों और नर्सों..... की आवाज़ भी.... साफ़-साफ़ सुन रही थी....''

''शी इज़ अ लिट्ल डिसओरिएंटेड. ऐसे केस में यह हो जाता है. अब पेशेंट को आराम करने दीजिए.'' नेहा

अब उस भारी आवाज़ वाले डॉक्टर को देख सकती है.

''नहीं, भुवन.... मैं वहां... सचमुच गयी थी....'' नेहा क्षीण स्वर में कह रही है.

नियर डेथ एक्सपीरियंस? क्या नेहा को आसन्न मृत्यु जैसा कुछ अनुभव हुआ है? यह सोचता हुआ भुवन आश्चर्य से नेहा को देखता है. फिर वह अपनी उंगली उसके हाथों पर रखकर उसे चुप रहने का इशारा करता है और धीरे से उसका माथा चूम लेता है.

''मैं मंदिर में प्रसाद चढ़ा कर आता हूं'', वह केवल इतना कहता है.

वह चलने लगता है तभी नेहा भुवन का हाथ पकड़ लेती है.

''मैं....लौट आयी हूं भुवन.... तुम्हारा और...पिंकी का प्यार... मुझे वापस लौटा लाया है.....''

जैसे गहरी खाई के मुहाने से नीचे झांक कर लौट आता है कोई सकुशल, वैसे लौट आयी हूं मैं तुम सब के लिए... नेहा सोचती है. फिर उसके होठ अपने-आप श्रीराम स्तुति जैसा कुछ बुदबुदाने लगते हैं.....

द्वारा श्री एच.बी.सिन्हा,
५१७४, श्यामलाल बिल्डिंग,
बसंत रोड, नयी दिल्ली-११००५५
फो. : ९८६८५११२८२/९८६८९५७४९९

कहानी

कभी-कभी मेरे दिल में....

मुंबई से नयी दिल्ली जा रही राजधानी एक्सप्रेस के उस फर्स्ट एसी कूपे में उस समय मैं अकेला यात्री था. गाड़ी प्लेटफॉर्म छोड़कर अपनी यात्रा पर चल चुकी थी. अब चूंकि किसी और के उस कूपे में आने की संभावना नहीं लग रही थी अतः मैं अपनी बर्थ पर पसर कर एक पत्रिका के पन्ने पलटने लगा था. तभी अचानक कूपे का दरवाज़ा तेज़ आवाज़ के साथ एक झटके से एक ओर हुआ और एक सूटकेस अंदर आकर गिरा. मैं हड़बड़ा कर उठ बैठा. कुछ घबरा सा गया था मैं. मैंने देखा कि लगभग मेरी ही उम्र का एक व्यक्ति अपने साथ एक ट्रालीनुमा सूटकेस घसीटता हुआ कूपे के अंदर दाख़िल हुआ. वह बहुत झुंझलाया हुआ लग रहा था. उसने अपना सामान अपनी बर्थ पर टिकाया और फिर मेरे सामने बैठ गया था. मैं भौंचक्का बैठा उसे देख रहा था. रुमाल से अपना मुंह पोंछते हुए उसने मेरी तरफ देखा और वह मुस्करा दिया. वह बोला,''यूं घूर-घूर कर क्या देख रहे हो यार, वैलिड टिकट होल्डर पैसेन्जर हूं. इसी कूपे में मेरा भी रिज़र्वेशन है, पहले ज़रा ग़लत कूपे में चला गया था, वहां से हड़बड़ी में यहां आया इसलिए मेरी एन्ट्री कुछ ज़्यादा धमाकेदार हो गयी. अब मुंबई में हूं तो मुंबईया फ़िल्मों का कुछ तो असर पड़ेगा ही, है कि नहीं ?'' यह कहकर उसने एक ज़ोर का ठहाका लगाया और एक तकिया पीठ पीछे लगाकर वह अधलेटा हो गया.

अब तक मैं भी अपने भौंचक्केपन से बाहर आ गया था. उसके ठहाके पर मेरी भी हंसी छूट गयी थी. उसने मुझसे पूछा, ''तो फिर कहां तक साथ रहेगा अपना.'' मैंने कहा, ''मैं दिल्ली जा रहा हूं.'' ''तब ठीक है, यानि अपना साथ पूरे सफर का रहेगा.'' वह कुछ चहककर बोला. ''कई बार जब कुछ स्टेशन बाद ही सहयात्री बदल जाते हैं तो मुझे बड़ी कोफ़्त होती है. भई अपने तो हैं फर्स्ट क्लास बातूनी. थोड़ी-थोड़ी दूर पर अगर सहयात्री बदल जाते हैं तो सारी बातचीत की ऐसी की तैसी हो जाती है. बातचीत का सिलसिला हैलो से बढ़कर हाऊ इज़ लाइफ तक आता ही है कि सामनेवाला टाटा, बाय-बाय करके चला जाता है. अब उसके बाद दूसरे के साथ दुबारा से हाय-हैलो करो. बड़ा फ्रस्टेटिंग लगता है.'' यह कहते-कहते उसने अपने हैंड बैग की जेब से पान मसाले का पाऊच निकाला और प्लास्टिक की चम्मच से थोड़ा सा पान मसाला निकाल कर मुंह में डाला, फिर वह पाऊच मेरी ओर बढ़ा दिया था. मुझे लगा कि जैसे बिल्ली के भागों छींका फूटा. दरअसल, मैं ख़ुद पान खाने का बड़ा शौकीन हूं पर अगर कभी पान न मिल सके तो पान मसाला भी आनंद देता है. इस समय मेरे पास दोनों में से कुछ नहीं था. पान मसाले का पाऊच देखकर मेरी आंखों में चमक आ गयी थी. मैंने बिना किसी औपचारिकता के पाऊच थामा और उसमें से थोड़ा सा पान मसाला मुंह में डालकर पाऊच वापिस लौटा दिया.

।। संजीव निगम ।।

पान मसाले ने मेरी तबीयत में तरावट ला दी थी. अब उस व्यक्ति में मेरी उत्सुकता जागृत हुई. मैंने पूछा, ''भाई साहब आप दिल्ली घूमने जा रहे हैं या काम से जा रहे हैं.'' यह सुनकर वह थोड़ा ज़ोर से हंसा फिर बोला, ''यूं तो दिल्ली में मेरा घर है पर सच कहूं तो मैं वहां घूमने ही जाता हूं.'' उसका उत्तर मुझे बड़ा अजीब सा लगा था पर फिर भी उसका साथ देने के लिए मैं भी हंस पड़ा था. उसने अपनी बात जारी रखी, ''अपनी कंपनी का ऑल इंडिया मार्केटिंग हेड होने के कारण मुझे इतना इधर-उधर भटकना पड़ता है कि मेरे अपने घर में मेरा स्टेटस एक टूरिस्ट जैसा ही है.'' उसकी रोचक बातों ने मुझे इस संतोष से भर दिया था कि अब दिल्ली तक का सफर अच्छा बीतेगा. मैं ख़ुद भी तो बहुत हंसी-मज़ाक की तबीयत वाला जो हूं. मैंने हंसकर उससे कहा, ''कहीं ऐसा तो नहीं कि बच्चे आपको कभी-

कभी वाले पापा कहते हों!'' उसने उसी हंसी भरे अंदाज़ में जवाब दिया, ''न जी न, यह नौबत नहीं आयी है क्योंकि बच्चे तो हैं ही नहीं. हां पर घर से बाहर आते-जाते रहने का एक फ़ायदा ज़रूर है कि शादी के इन १८ सालों के बाद भी हम मियां-बीवी में एक दूसरे के लिए तड़प बरकरार है. चार-पांच दिन साथ रहते हैं फिर चार-पांच दिन अलग. इस तरह से प्रेमी-प्रेमिका की तरह मिलने-बिछुड़ने से आपस में चाहत बनी रहती है.''

''हाऊ लकी यू आर!'' मैंने कहा, ''शादी के १८ साल बाद जबकि मियां-बीवी एक-दूसरे का चेहरा देखते ही चिढ़ जाते हैं, तुम प्यार की पींगें भर रहे हो.'' वो तपाक से बोला, ''अरे यार, नज़र क्यों लगा रहे हो, लो पान मसाला खाओ.'' उसने पाऊच मेरी तरफ बढ़ाया, मैंने झट से थाम लिया.

वो बोला, ''गुरू हमने जब पहली बार आपसे पान मसाला लेने को कहा था हम तो तभी समझ गये थे कि आप और हम यानि हम दोनों पान की रंगीन पिचकारियां छोड़ने के शौकीन हैं.'' इतने में टीसी आया और टिकट चेक करके चला गया. उसके पीछे-पीछे ही वेटर चाय लेकर आ गया था. हमारी ट्रेनों की एक बड़ी ख़ासियत यह है कि इनमें चाय उसी समय दी जाती है जबकि सबसे ज़्यादा तेज़ी से हिचकोले ले रही होती है. उस समय चाय को संभालने में आपका ध्यान इस कदर केंद्रित हो जाता है कि आप ध्यान योग की उच्चतम अवस्था में आ जाते हैं. इसलिए हम भी जितनी देर चाय का कप थामे रहे, हमारा ध्यान सिर्फ़ चाय पर ही टिका रहा था. जो इक्का-दुक्का अर्धवाक्य मुंह से निकले थे, वे भी चाय के विषय में ही थे.

चाय का झमेला हटा ही था कि उसका मोबाइल बजा. उसने कॉल रिसीव करते ही बड़ी ज़ोर से कहा, ''हाय माय लव, याद आ गयी मेरी.'' यह कहते ही उसने मेरी उपस्थिति का ख़्याल किये बिना ही मोबाइल पर झटाझट तीन-चार चुंबन जड़ दिये. उसकी इस हरकत पर मैं मुस्करा उठा था.

उसने मेरी तरफ देखा और फिर मुस्कराकर अपनी बीवी से कहा, ''लुक डार्लिंग, हम मियां बीवी के प्यार को भी जालिम ज़माना ईर्ष्या की नज़र से देख रहा है. अब बाकी प्यार घर पहुंचकर ही करूंगा. कल सुबह तो पहुंच ही रहा हूं. ओके, बाय.''

१६ अक्तूबर १९५९; एम.ए., एम.फिल

हिंदी के सुपरिचित लेखक, कवि, व्यंग्यकार और नाटककार. संवेदनशील रचनाकार एवं अत्यंत प्रभावी. देना बैंक में मुख्य प्रबंधक, मार्केटिंग व प्रचार के पद पर काम करते हुए स्वेच्छा से सेवा निवृत्ति ले ली.

मीडिया और विज्ञापन जगत से संबद्ध तथा कई लघु फ़िल्मों, टी.वी. विज्ञापनों का लेखन किया है. मुंबई के कुछ कॉलेजों में पत्रकारिता पाठ्यक्रमों में अतिथि वक्ता, लेखक तथा वक्ता के रूप में अनेक सम्मान प्राप्त, रचनाएं हिंदी की पत्र-पत्रिकाओं में लगातार प्रकाशित.

उसने मोबाइल बंद किया और हंसने लगा. उसके साथ-साथ मैं भी हंसने लगा था. मैंने कहा, ''यार, तुम मियां-बीवी के बीच बड़ा मस्त रिलेशनशिप है. मुझे तुम दोनों का रोमांस देखकर, सॉरी ....सुनकर ख़ुशी हो रही थी, जलन नहीं. काश, अपनी किस्मत भी ऐसी होती.'' चूंकि हम दोनों ही बकबकिये किस्म के इंसान थे, इसलिए कुछ ज़्यादा ही बेतकल्लुफ हो गये थे. वो बोला, ''और यह भी देखो, हमारी अरैन्ज्ड मैरिज है, लव मैरिज नहीं.'' मैंने थोड़ा ठंडे स्वर में जवाब दिया, ''अरैन्ज्ड मैरिज तो हमारी भी है, पर उसमें इतनी गर्मजोशी कभी नहीं रही.'' उसने एक गहरी निगाह मुझ पर डाली, फिर थोड़ा आंखें नचाकर बोला, ''पर तुम्हें देखकर तो ऐसा लगता है कि तुम्हारी लव मैरिज ही होनी चाहिए थी, बड़ी रोमियो टाईप पर्सनैलिटी है!''

कोशिश तो की थी, पर प्यार सफल नहीं हुआ, इसलिए झख मारकर अरैन्ज्ड मैरिज करनी पड़ी थी.''

इस बीच वह बर्थ पर पूरी तरह से फैल कर लेट चुका था, पर यह बात सुनते ही वह ऐसा झटका खाकर उठा जैसे उसने बर्थ के नीचे, किसी नंगे तार को छू लिया हो. वह बोला, ''क्या कह रहे हो? क्या वाकई तुमने किसी से लव किया था? लव, कहां, कैसे, यार कुछ बताओ न कैसा रहा था वह लव अफेयर? वो बहारों के दिन. हमने तो सिर्फ़ फ़िल्मों में ही देखे हैं प्यार के नज़ारे. बताओ न खलीफा.''

मैं बोला, ''जाने दो यार, बात बहुत पुरानी हो चुकी है. उसको अब क्या उखाड़ना? मैंने ख़ुद उन दिनों को न जाने कबसे याद नहीं किया है. लगभग भूल ही गया हूं.'' उसने झट से पान मसाले का पाऊच आगे बढ़ाया और कहा, ''लो एक चम्मच मुंह में डालो, दिमाग की बत्ती फौरन जल जायेगी.''

अबकी बार का ऑफर बिल्कुल रिश्वत जैसा था जिसे मैंने किसी रिश्वतखोर अफ़सर की तत्परता से स्वीकार कर लिया. मैंने तकिया गोद में रखा और बोलना शुरू किया.

''यह तब की बात है जब मैं दिल्ली यूनिवर्सिटी से एम.ए. कर रहा था, यानि लगभग २४-२५ साल पहले की बात है. वह भी मेरी क्लास में पढ़ा करती थी. क्लास में तो मेरा उसकी तरफ कुछ ख़ास ध्यान नहीं गया था क्योंकि क्लास में ६०-७० लड़के-लड़कियां थे, सबके अपने-अपने ग्रुप थे. पर हुआ कुछ यूं कि हम दोनों कई बार जब लाइब्रेरी में पढ़ने गये तो संयोग से पास की सीटों पर बैठे. क्लास फैलो तो थे ही, इसलिए हाय, हैलो के साथ-साथ फुसफुसा कर एक दो बातें भी कर लेते थे. वह पढ़ने के बीच-बीच में इलायची खाती रहती थी. एक दिन हम साथ-साथ बाहर निकले तो मैंने यूं ही उससे कह दिया था कि मुझे भी इलायची बड़ी पसंद है. बस उसके बाद से वह जब इलायची खाती तो धीमे से एक मेरी तरफ बढ़ा देती थी. बस इसी तरह हमारे बीच एक आकर्षण पनपने लगा था. धीरे-धीरे हम कभी-कभार यूनिवर्सिटी के लॉन में बैठ कर चाय पिया करने लगे थे. और उसके बाद फ़ोन पर आपस में बात करने का सिलसिला जो शुरू हुआ वह अपने-आप प्यार में बदल गया था. कई साल तक हमारा प्यार चलता रहा. हम शादी के लिए तैयार थे पर उसके घरवाले तैयार नहीं थे. बहुत परेशान करते थे उसको. किस्मत से मेरी नौकरी दिल्ली से बहुत दूर एक शहर में लगी और वह भावनात्मक रूप से अकेली पड़ गयी थी. शायद वह अकेले रह कर अपने माता-पिता का प्रेशर न झेल पायी और धीरे-धीरे उसने मुझे पत्र लिखने बंद कर दिये. एक दिन अचानक एक कॉमन फ्रेन्ड ने पत्र भेजकर बताया कि उसकी शादी हो गयी. कुछ दिनों तक तो मैं बुरी तरह से टूटा रहा था, पर फिर मैंने भी अपने आपको संभाल लिया था. और फिर कुछ समय बाद मेरी भी शादी हो गयी. मैं अपनी दुनिया में व्यस्त होता चला गया.''

वह बड़े ध्यान से मेरी इस कहानी को सुन रहा था. उसने पूछा, ''फिर कभी उससे कोई बात या मुलाकात हुई?'' मैंने नकार में सिर हिला दिया था. वह कुछ सोचता रहा, फिर उसने अचानक मुझसे पूछा, ''यार यह तुम्हारे प्यार की बात किस सन की रही होगी?'' मैंने कहा, ८२-८३ की.'' वह बोला, ''अरे उस समय तो मेरी बीवी भी दिल्ली यूनिवर्सिटी में पढ़ रही थी. वह भी एम. ए. में थी. तुम किस सब्जेक्ट में थे. ''हिंदी में'', मैंने जवाब दिया. वह उछल गया, बोला, ''अरे, मेरी बीवी भी हिंदी में थी.'' इसी के साथ उसके चेहरे पर कुछ परेशानी उभर आयी थी. उसने कहा, ''अगर बुरा न मानो तो बता सकते हो तुम्हारी प्रेमिका का नाम क्या था?'' इस प्रश्न से मैं उसके दिल में मची उथल-पुथल को ताड़ गया था. उसकी इस परेशानी का मज़ा लेने के लिए मैंने जानबूझकर कुछ ज़्यादा ही लापरवाही से कहा, ''अरे भई, जो तुम सोच रहे हो, वैसा कुछ नहीं होगा. हिंदी एम. ए. तो लड़कियों से ही भरा रहता है.'' उसने पलट कर कहा, ''फिर भी नाम बताने में क्या हर्ज़ है. इतने सालों बाद क्या फ़र्क पड़ता है?''

मैंने कुछ सोचते हुए कहा, ''अनीता.'' यह सुनते ही उसका मुंह खुला रह गया. उसने हलके से दोहराया, ''अनीता!'' फिर कुछ तेज़ स्वर में पूछा, ''कहीं अनीता तरनेजा तो नहीं.'' मैं कुछ देर तक उसका चेहरा देखता रह गया था. उसकी बेसब्र निगाहें मुझ पर टिकी हुई थीं.

मैंने जवाब दिया, ''नहीं. उसका नाम अनीता सक्सेना था.'' इस पर भी उसके चेहरे पर इत्मिनान की रेखाएं नहीं उभरी थीं. उसने फिर पूछा, ''तुम्हें अपनी क्लास में

किसी अनीता तरनेजा की याद नहीं है.'' मैंने कुछ झुंझला कर कर, ''नहीं, भई, नहीं याद है. क्लास में इतनी सारी लड़कियां थीं. मैं हरेक को थोड़े ही जानता था. लड़के बहुत कम थे. इसलिए हो सकता है कि लड़कियां सब लड़कों के नाम जानती हों, उन्हें पहचानती हों.''

''इसका मतलब है कि अगर मेरी बीवी तुम्हें देखेगी तो पहचान सकती है.'' उसने कहा. मैंने जवाब दिया, ''शायद!''

वह तुरंत अपने मोबाइल पर डायल करने लगा. कनेक्शन लगते ही उसने बोलना शुरू किया, ''डार्लिंग, सुनो कल सुबह तुम स्टेशन आ जाना, मुझे लेने के लिए....बस.... बस कुछ पूछो मत.... तुम्हारे एक पुराने क्लास फैलो से मिलवाना है..... अरे-अरे... सब बता दूंगा तो सरप्राईज क्या रहेगा? चलो....अच्छा....बाय.''

मैंने थोड़ा झुंझला कर कहा, ''अरे यार, उनको क्यों परेशान किया.'' उसने पूछा, ''क्यों, क्या तुम्हें उत्सुकता नहीं है अपनी एक पुरानी क्लास फैलो से मिलने की.'' मैं कुछ जवाब देने ही जा रहा था कि कूपे का दरवाज़ा खुला और हमारा डिनर आ गया. हम दोनों चुपचाप खाना खाने लग गये थे. खाने के बाद पान मसाले का एक दौर और चला और उसके बाद वह चादर खींच कर सो गया. मैं बत्ती जलाकर कुछ देर तक किताब पढ़ता रहा था. उसके बाद मैं भी बत्ती बंद करके लेट गया था.

रेलगाड़ी अपनी तेज़ गति से चली जा रही थी. एअरकंडीशन्ड केबिन की खिड़कियों में लगे काले शीशों के पार कुछ नहीं दिख रहा था, पर फिर भी मैंने पेट के बल लेटकर कुछ उचक कर अपनी आंखें खिड़की के कांच पर गड़ा दी थीं. इस अचानक आये सहयात्री ने मुझे अपने वर्तमान से खींच कर जवानी के दिनों में जा पटका था. जो चेहरा, जो बातें, जो कसमें, मैं काफी समय पहले भूल चुका था, वह मुझे दिखाई-सुनाई पड़ने लगी थीं. जितना मैं उनमें डूबता जा रहा था, उतनी ही मेरी छटपटाहट बढ़ती जा रही थी. अचानक ही मुझे अपना सुखी वर्तमान एक फरेब लगने लगा था. लग रहा था कि जो पीछे छूट गया है अगर वह आज साथ होता तो ज़िंदगी कितनी सुहानी होती.

इन्हीं ख्यालों में डूबे रात कब गुज़र गयी थी कुछ पता ही न चला था. सुबह-सुबह जब मथुरा जंक्शन आया तो मैं उठकर बैठ गया.

मेरा सहयात्री अभी भी गहरी नींद में था. मैं काफी देर तक यूं ही अपनी बर्थ पर बैठा रहा था. जैसे ही इंजन ने सीटी बजाकर गाड़ी के चलने का संकेत किया, मैंने लपक कर अपना बैग उठाया और प्लेटफॉर्म पर उतर गया था. गाड़ी धीरे-धीरे आगे बढ़ते हुए मेरे सामने से गुज़र गयी थी और मैं चुपचाप उसे जाते देखता रहा था.

उस दिन उस ट्रेन से दिल्ली पहुंचने की हिम्मत ही मेरे अंदर नहीं थी. अपनी कमज़ोरी को अपने अंदर दबाये हुए मैं पास की एक बेंच पर जाकर बैठ गया था, दिल्ली जाने के लिए किसी दूसरी ट्रेन के इंतज़ार में. वहां बैठे-बैठे अनायास ही मेरे होंठ गुनगुना उठे थे,'' मैं जानता हूं कि तू गैर है मगर फिर भी, कभी-कभी मेरे दिल में ख्याल आता है.....

डी-२०४, संकल्प-२, पिंपरीपाड़ा, फ़िल्म सिटी रोड, मालाड (पूर्व), मुंबई-४०००९७
मो. ९८२१२८५१९४.

गीतिका

रमेशचंद्र शर्मा 'चंद्र'

जब किसी की मौत कोई मर गया,
एक दिन में सिंधु भव का तर गया.
अन्य से कोई अपेक्षा भी नहीं,
दिल न जाने किसलिए फिर डर गया ?
ज़हर खाकर भी कई मरते नहीं,
मरनेवाला एक पल में मर गया.
स्वप्न सब के कब, कहां पूरे हुए ?
लौटकर हर पथिक अपने घर गया.
उम्र सारी इंतज़ारों में कटी,
दिल पै जादू कोई कैसा कर गया.
शत्रुतावश घर जलाया आपने,
घर मेरा जलकर उजाला कर गया.
लौटकर आता नहीं आंसू कभी,
आंख से जो ढर गया, सो ढर गया.

डी ४, उदय हाउसिंग सोसा, वैजलपुर, अहमदाबाद-३८००१५

कहानी

भेड़िए

'बस बहुत हो चुका, बहुत दे लीं पंचायत ने अपनी ओछी दलीलें. लेकिन मैं इस कबीले में आनेवाली उन लड़कियों की तरह नहीं, जो ब्याह कर तो किसी एक के साथ आती हैं, मगर हमबिस्तर उन्हें सबके साथ होना पड़ता है. मैं जिसके साथ ब्याह कर आयी हूं. सिर्फ़ उसी का मुझ पर हक है. मैं अब तक चली आ रही इस घिनौनी प्रथा को मानने से इंकार करती हूं.' बुधिया की आंखों में शोले धधक रहे थे.

'तुम्हें पंचायत का निर्णय न मानने के कारण भरी पंचायत में नंगा किया जा सकता है. पंचायत ने एक स्वर में कहा.

पंचायत के इस कथन पर सभी स्तब्ध रह गये, हालांकि इसमें कुछ नया नहीं था. कितनी ही बार सबकी आंखों के सामने ऐसा किया जा चुका है. लेकिन बुधिया को ब्याह कर आये हुए तो अभी हफ़्ता भर भी नहीं हुआ है. क्या पंचायत उसके साथ भी ऐसा करेगी?

'कोई हाथ तो लगाकर दिखाये, एक-एक को नंगा करके रख दूंगी. सारी मर्दानगी निकल जायेगी. नंगा करेंगे.... साले.... जब मेरा ब्याह सेवा से हुआ है तो मैं उसके बड़े भाइयों के साथ हमबिस्तर क्यों होऊं? क्या मुझे घास समझ लिया है जो हर जानवर मुंह मारता फिरे. और अगर यहां पर ऐसा रिवाज था भी तो इस भड़वे सेवा ने मुझे बताया क्यों नहीं. अगर यह पहले बता देता तो इसके मुंह पर थूकती भी नहीं. बड़ा आया मुझे दिलो जान से चाहनेवाला... बाज़ारू वस्तु समझ लिया है हमें?'

बुधिया के तमतमाये चेहरे को देखकर पंचायत के सदस्यों के मुंह सूख गये, जीभ तालू से जा चिपकी. आज तक कभी ऐसा नहीं हुआ... सभी ने पंचायत के निर्णय का आंख मूंदकर स्वागत किया है.... लेकिन यह दो कौड़ी की शहरी छोकरी हमें ही नीचा दिखा रही है. पंचायत को सबके सामने ही जलील कर दिया.... इतने लोगों के सामने आज तक किसी की हिम्मत नहीं हुई. सबके सब मौन, सबकी बोलती बंद. बेबसी उनके चेहरों से साफ़ झलक रही थी. पंचों में कानाफूसी हुई, अपनी इज़्ज़त बचे तो समझो सबकी बची, निर्णय लिया गया कि पंचायत दस दिन के बाद अपना फैसला सुनायेगी.

पूरा मजमा उठकर जाने लगा. कहां तो सभी आये थे कि आज पंचायत की कार्यवाही जबरदस्त होगी और यहां तो पंचायत की बोलती ही बंद हो गयी. बुधिया के तमतमाये चेहरे पर एक मुस्कान दौड़ गयी. सेवा को उसने खा जानेवाली नज़रों से देखा. वह सहमा हुआ एक तरफ नज़रें झुकाये खड़ा था. उसके जी में आया कि वह उसके मुंह पर थूक दे... नपुंसक कहीं का. अगर वह भी उसके पक्ष में बोलता तो उसकी हिम्मत और बढ़ जाती, लेकिन वह तो चुपचाप ऐसे खड़ा रहा जैसे कि उसके मुंह में ज़ुबान ही न हो.

// नज़्म सुभाष //

सेवा के दोनों भाई दांत पीसते हुए रह गये. जाल में फंसी हुई मछली उनकी पकड़ से बाहर जा चुकी थी. कहां तो उन्होंने सोचा था कि आज उन्हें भी नये-नये माल के दर्शन होंगे और कहां यह सब... साला.... सेवा.... हमारी बीवियों के साथ रंगरेलियां मनाता रहा और जब हमारी बारी आयी तो पीठ दिखा गया.... साला... हरामी. मगर देखता हूं ये साली मक्कार कब तक भागेगी. एक न एक दिन तो फंसेगी ही.... तब लौकी की तरह खुरच डालेंगे पूरे बदन को. राजी ख़ुशी मान जाती तो प्यार से पेश आते, लेकिन अब आग उड़ेल देंगे पूरे जिस्म में फिर देखेंगे क्या करती है?

वे दोनों मन ही मन सोचते रहे लेकिन दिल्ली अभी दूर थी. फैसला होने में पूरे दस दिन बाकी थे.

□

बुधिया की आंखों से नींद ग़ायब थी. पूरा कबीला उससे खार खाये था. उसने खस जनजाति में चली आ

रही प्रथा को मानने से इंकार जो कर दिया था. कैसी प्रथा है यह..... उसने तो नहीं सुना कि एक भाई का ब्याह हो जाये तो सभी भाई उसके साथ संबंध बनायें और तो और संतान निर्धारण का तरीका भी कितना अजीब, जब स्त्री गर्भवती हो तो भाइयों में से कोई भी भाई गर्भकाल के पांचवे महीने में स्त्री को धनुष-तीर भेंट कर दे बस. सामाजिक रूप से, पैदा होनेवाली संतान का वही पिता, भले ही वह संतान उसके संसर्ग से न उत्पन्न हुई हो. कितनी घिनौनी प्रथा है, औरतों की ज़िंदगी जानवरों से भी बदतर. जिसकी मर्जी हो आये, अपना काम निकाले और चलता बने. मगर वह ऐसा नहीं होने देगी, वह कोई जानवर नहीं जो अपनी इच्छाओं को ताक पर रखकर दूसरों के बिस्तर पर बिछ जाये.

मगर क्या वह इस पूरे कबीले से लोहा ले पायेगी? वह अकेली है, कोई भी तो साथ नहीं दे रहा. सेवा, जो उसे ब्याह कर लाया वह भी इस मामले में चुप है. जैसे सांप सूंघ गया हो हरामी को. पहले ख़ूब मलाई खायी है, अब खिलाने से कैसे मना करे? आज तो वह डर के मारे उसके पास लेटने भी नहीं आया, बाहर छप्पर के नीचे खटिया डालकर सो गया. अगर आता भी तो ऐसी-ऐसी खरी-खोटी सुनाती कि पूरी ज़िंदगी याद रखता.

बुधिया इस समय विचारों के पालने में झूल रही थी मगर किसी ठोस नतीजे पर नहीं पहुंच पा रही थी. एक बार उसका मन हुआ कि वह इस दलदल से भाग जाये. पहले भी ख़ुद ही कमाती थी. अब भी कमा कर खा लेगी. मगर समस्या तो ज्यों की त्यों बनी रहेगी, ये भूखे भेड़िए फिर किसी और को अपनी हवस का शिकार बनायेंगे और पंचायत मूक दर्शक बनी समर्थन करती रहेगी ऐसे कुकृत्यों का. फिर तो उसे रुकना होगा यहीं, लड़ना होगा इस सड़ी-गली प्रथा से. वह लड़ेगी, ज़रूर लड़ेगी ताकि आगे आने वाली पीढ़ी इस दलदल से निकल सके. चाहे इसके लिए उसे कितनी भी कुर्बानियां क्यों न देनी पड़ें, वह देगी.

दोपहर बारह बजे तक कबीले की कई औरतें बुधिया के घर में हाजिर थीं. उन्हें यह जानने की उत्सुकता थी कि आखिर उसमें इतनी हिम्मत कहां से आ गयी जो वह पंचायत से लोहा ले बैठी जबकि यहां पर तो किसी की हिम्मत नहीं जो पंचायत के आगे सिर उठाकर बात कर सके. रधिया ने छेड़ ही दिया, 'पंचायत तक को

१ जुलाई १९८६ सीतापुर (उ.प्र.);
बी.ए. (अंतिम वर्ष)

लेखन : देश की प्रतिष्ठित पत्र-पत्रिकाओं में लगभग तीन दर्जन रचनाएं प्रकाशित.

संप्रति : विद्यार्थी.

गरिया दिया. किसी और के बस की बात नहीं, हम होतीं तो सर झुकाकर उनकी बातें मान लेतीं, मगर तुम तो बेखौफ थी.

'दीदी, यह तो तुम भी कर सकती हो बस हिम्मत करने की बात है. जहां पर ग़लत हो रहा हो वहां आवाज़ तो उठानी ही पड़ती है. अब यह कहां का न्याय है कि ब्याह किसी के साथ आओ और बिस्तर सबका... छीः छीः. मुझसे यह सब नहीं हो सकता.'

'मगर यहां तो सदियों से यह रिवाज चला आ रहा है- हम कर भी क्या सकते हैं अगर कुछ बोलो तो घर से भगा दिया जाये, फिर कहां ले जायेंगे छोटे-छोटे बच्चों को? इसलिए न चाहकर भी चुप रहना पड़ता है. कई बार तो जी में आता है कि जहर खा लूं. यह भी कोई ज़िंदगी है. पांच-पांच भाई हैं, सबके सब शादीशुदा, मगर सबके साथ कुढ़ना हमें पड़ता है. जान निकल जाती है.... लेकिन क्या करूं कुछ समझ में नहीं आता.' रधिया कहते-कहते रो पड़ी. दिल का सारा गुबार जो वर्षों से भरा पड़ा था आज उसने बुधिया के सामने निकाल दिया. उसकी करुण दशा सुनकर सभी औरतें रो पड़ीं. उन सबकी भी तो वही दशा थी- कोई उनकी बात सुननेवाला ही नहीं था. मगर अब उन्हें लगता था बुधिया ज़रूर उनके दुःख को समझेगी.

'रोओ मत दीदी, सब ठीक हो जायेगा. बस इस पुरुष प्रधान वर्चस्व के खिलाफ एकजुट होना पड़ेगा,

फिर देखती हूं इनकी मनमानी कैसे चलती है. बहुत दिन तक सह लिया सबने. बहुत दिन तक दबाये रखा हमको, मगर अब ऐसा नहीं होगा. हम बदलेंगे इन सड़े-गले अमानवीय रिवाजों को. अब हम ख़ुद बनायेंगे कानून. हम ख़ुद करेंगे फैसला, तब देखती हूं इन हवसी भेड़ियों की अक्ल ठिकाने कैसे नहीं आती?

बुधिया का चेहरा तमतमा गया. आंखों में क्रोध की चिंगारियां धधकने लगीं.

'हां, कुछ तो करना ही पड़ेगा नहीं तो ये हमें जीने नहीं देंगे. सब हम पर अधिकार जताते हैं लेकिन जब कर्तव्य की बात आती है तो कन्नी काट जाते हैं. तीन महीने पहले यह पैर हंसिया से कट गया था. किसी ने दवा नहीं दिलायी. अब पक कर मवाद टपकता है. जब किसी से कहती हूं तो कहते हैं कि वह उसे ब्याह कर नहीं लाये. ख़ुद पैसे इकट्ठे करे और इलाज कराये. मगर जब ज़रूरत होती है तो साले.... सबके सब पूरे जिस्म को नोंच डालते हैं. तब मैं उनकी ब्याहता नहीं रह जाती.' विधवा शशिकला फफक कर रो पड़ी. तीन साल पहले उसका मर्द टी.वी. की वजह से मर चुका था. तब से वह रोटी-रोटी को मोहताज है. कहने को वह विधवा है, मगर उसे वे सारे काम करने पड़ते हैं जो एक शादीशुदा औरत करती है. उसने अपना पैर बुधिया को दिखाया. ऊपर की खाल सड़ चुकी थी, मवाद रिस रहा था. चलने में भी वह असमर्थ थी मगर घरेलू काम तो करने ही पड़ते थे.

'बस दीदी, अब आप लोग कुछ और मत बताइए नहीं तो मैं रो पड़ूंगी.' उसकी आंखों में आंसू तैर गये. इस रिवाज को तो अब बंद करवा कर ही दम लूंगी चाहे इसके लिए मुझे कुछ भी करना पड़े. बस आप लोगों का साथ चाहिए मुझे. क्या आप लोग मेरा साथ देंगी?'

'हमें करना क्या होगा?' सब एक साथ बोलीं.

'अगर आप लोग वाकई इन कामांध पुरुषों के वर्चस्व से आज़ाद होना चाहती हैं तो पूरे कबीले की औरतों को अपने पक्ष में करना होगा. उन्हें यह समझाना होगा कि अब और सहन करना पुरुषों के अत्याचार को बढ़ावा देना है. अब इन हरामजादों को सबक सिखाने का वक़्त आ चुका है. पंचायत बैठने में अभी नौ दिन हैं. इन नौ दिनों में सभी से बात करनी होगी अगर पूरे कबीले से सत्तर-अस्सी औरतें भी हमारे साथ हो जायें तो समझो काम बन गया. जीत हमारी होगी.... लेकिन हिम्मत नहीं हारना. सभी काम गुपचुप तरीके से करना है, किसी को कानो-कान ख़बर न हो.'

'लेकिन क्या ऐसा कर पायेंगे?' रधिया कुछ सकुचाते हुए बोली.

'क्यों नहीं कर पायेंगे? यह काम मुश्किल ज़रूर है मगर नामुमकिन नहीं. जानती हो अभी कुछ दिन पहले की बात है एक आदमी शराब पीकर रोज अपनी औरत को मारता पीटता था. उसने कई बार पंचायत में शिकायत की, लेकिन उन्होंने उसकी नहीं सुनी. फिर उसने महिलाओं का संगठन तैयार किया. महिलाओं की पंचायत बैठी. पंचायत ने शराबी पति को ग्यारह जूते मारने का आदेश दिया और साथ में एक महीने घरेलू काम का फरमान सुनाया. सारी मर्दानगी एक ही दिन में रफूचक्कर हो गयी. उसने कान पकड़े, उठक बैठक लगायी कि वह दुबारा पत्नी पर हाथ नहीं उठायेगा.'

बुधिया सबको बताती जा रही थी और सभी औरतें बड़े चाव से उसे सुन रही थीं.

'क्या सच में ऐसा हुआ?' सभी ने आश्चर्य से कहा.

'तो क्या मैं झूठ बोलती हूं. कई अख़बार वालों ने तो इसे छापा भी. यह तब की बात है जब हम शहर में रहते थे.'

'तब तो हम जी जान लगा देंगे सभी को अपने पक्ष में करने के लिए,' सभी ने एक स्वर में कहा.

बुधिया के चेहरे पर विजयी मुस्कान तैर गयी.

□

पंचायत की कार्यवाही शुरू होने में अभी आधा घंटा था, मगर पंचायत खचाखच भरी थी. तिल रखने की भी जगह नहीं थी. पिछली बार तो इससे कम लोग थे. शायद सभी को पता रहा होगा कि बुधिया को पंचायत की बात माननी ही पड़ेगी. मगर उसके विरोध कर देने के कारण जो लोग पिछली बार नहीं आये थे वे अपने आपको कोस रहे थे, इसलिए इस बार पहले ही आ चुके थे. सब यह जानने को उत्सुक हैं कि आख़िर आज क्या होनेवाला है.

करीब बीस मिनट बाद पंचों ने आकर आसन ग्रहण किया. सभी उनके सम्मान में उठ खड़े हुए. एक तरफ सेवा और उसके दोनों बड़े भाई खड़े हुए थे तो दूसरी तरफ बुधिया एकदम चट्टान सरीखी दृढ़.

पंचों ने कहना शुरू किया- 'जैसा कि सभी लोग जानते हैं कि हमारी इस जनजाति में शुरू से ही यह रिवाज रहा है कि बड़े भाई का ब्याह होने पर उसकी पत्नी से सभी भाई संबंध बना सकते हैं और उसी तरह अन्य भाइयों का ब्याह होने पर भी सभी भाई सब की पत्नियों के साथ संबंध बना सकते हैं. ये बुजुर्गों के बनाये हुए नियम हैं जिनका हम कबीले वाले सम्मान करते हैं. मगर यह शहरी छोकरी हमारी प्रथा को मानने से इंकार कर रही है और इसने पिछली बार पंचायत को भला-बुरा कहने के साथ-साथ गरियाया भी. मैं आप सभी कबीले वालों से पूछना चाहता हूं कि इसे सजा मिलनी चाहिए अथवा नहीं.'

'यह दो कौड़ी की शहरी छोकरी हमारे अधिकारों को हमसे छीनना चाहती है इसलिए सजा तो उसे ज़रूर मिलनी चाहिए.' पूरी पुरुष प्रजाति एक साथ चिल्लायी.

'ए छोकरी! सुन रही है कि पूरा कबीला क्या चाहता है?' पंच बुधिया से मुखातिब हुए.

'वाह क्या न्याय है? गिद्धों से पूछा जा रहा है कि उन्हें गर्म-गर्म गोश्त की दरकार है अथवा नहीं? मैं सुन रही हूं कि पूरा कबीला क्या चाहता है. गिद्ध कब नहीं चाहेगा कि उसे रोज गर्मागरम गोश्त खाने को मिले और मैं यह भी सुन रही हूं कि सभी अधिकारों की बात कर रहे हैं मगर इसमें कोई ऐसा है जो कर्तव्यों की बात करे?' व्यंग्यात्मक लहजे में वह बोली.

'पुरुषों को उनके अधिकार पता हैं, तुम्हें याद दिलाने की ज़रूरत नहीं है.'

'हां.... सही कहा पंचायत ने... पुरुषों का यह कर्तव्य है कि वह अपनी पत्नी को छोड़कर दूसरों की पत्नियों को अपनी हवस का शिकार बनाते रहें और स्त्रियां चुपचाप उनकी दरिंदगी का शिकार रिवाज के नाम पर बनती रहें. तुम सब अपने आपको इंसान कहते हो.... शर्म आनी चाहिए तुम्हें अपनी इस घटिया सोच पर.... अरे... जानवर भी बिना दूसरे की मर्जी के संबंध नहीं बनाते. क्या औरत जानवरों से भी गयी गुज़री है या वह केवल यौन संबंध बनाने की वस्तु मात्र है? जो भी आये भोग कर चलता बने. क्या औरत की कोई इच्छा ही नहीं?' चीख़ पड़ी थी वह.

'यह रिवाज आज से नहीं सदियों से चला आ रहा है. ब्याह कर आनेवाली लड़कियों को यह बात पहले से ही पता होती है.' पंचायत ने एक मनगढ़ंत सा उत्तर दिया.

'रिवाज... रिवाज.... रिवाज... आग लगे ऐसे रिवाज को जो औरतों के साथ जानवरों से भी बदत्तर सुलूक करता हो. ऐसे रिवाज को समाप्त भी किया जा सकता है.'

'यह हमारी संस्कृति की निंदा है हम इसे बर्दाश्त नहीं करेंगे.' पंच तैश में आ गये.

'हां क्यों नहीं.... तुम सब अपनी संस्कृति की निंदा बर्दाश्त नहीं कर सकते मगर एक विधवा स्त्री के साथ होनेवाला अमानवीय व्यवहार बर्दाश्त कर सकते हो.'

'किस विधवा की बात करती हो तुम.....'

'मैं उस शशिकला की बात कर रही हूं जो तुम सबकी नज़र में विधवा है, मगर आज भी उसे अपने कुकर्मी देवरों के साथ खटना पड़ता है. जब वह उनके बिस्तर पर होती है तब वह विधवा नहीं रह जाती. तीन महीने से उसके पैर में घाव है. ऊपर की पूरी खाल सड़ चुकी है. मवाद रिसता रहता है उसकी किसी हरामजादे को फिक्र नहीं. बस, उसके जिस्म से सभी के संबंध हैं, लेकिन सड़े हुए जिस्म की दवा-दारू से किसी का कोई संबंध नहीं. और अब यह पंचायत चाहती है कि मैं भी जाकर सेवा के भाइयों के बिस्तर पर बिछ जाऊं....'

'तुम पुरुषों की सड़ी गली बदबूदार नीतियां अब नहीं चलने वालीं. बहुत सह चुके हम लोग.... अब बदलाव होकर रहेगा. क्यों बहनों!' बुधिया एकदम तैश में आ चुकी थी. आज वह आर-पार लड़ाई के पक्ष में थी.

'अब हम नहीं सहेंगे.... नहीं सहेंगे..' हुजूम की सभी औरतें एक स्वर में चीखते हुए उठ खड़ी हुईं. पूरा मजमा स्तब्ध, यह क्या हो गया? बुझी हुई राख में अचानक लपटें कहां से उठने लगीं? पंचायत की सिट्टी-पिट्टी गुम.... आख़िर वह किस-किस को संभालेगी. कुछ दूर पर साठ-सत्तर औरतें हाथ में डंडा, लाठी, बांका जो भी जिसे मिला लिये चली आ रही थीं. पंचों की हालत बिगड़ने लगी. कुछ औरतें तो उनके घर की भी थीं जिन्हें कल तक वह अपनी जागीर समझते थे, आज वे ही उनके खिलाफ़ मोर्चा खोले थीं. किसी की समझ में नहीं आ रहा था कि इतनी जल्दी में यह सब

कैसे हो गया. औरतें नजदीक आ चुकी थीं. पंचों का धैर्य जवाब दे गया. सब चबूतरे पर से कूद-कूद कर भागने लगे, मगर औरतों ने उन्हें चारों तरफ से घेर रखा था. भागने में कुछ तो सफल हो गये मगर अधिकतर लोगों की ख़ूब पिटाई हुई. किसी का हाथ टूटा तो किसी का पैर. सेवा और उसके दोनों भाई भी एक तरफ पड़े हुए कराह रहे थे. कल तक औरतों के जिस्म को नोचनेवाले भेड़िए इस समय ख़ुद अपने नुचे हुए जिस्म से बहते लहू को निहार रहे थे. बुधिया ने किसी पर हाथ नहीं उठाया. वह चुपचाप एक किनारे खड़ी इस बदलाव को देख रही थी.

द्वारा विपुल बुक डिपो,
एस. के. डी. प्लाजा, ई. ब्लाक सब्जी मंडी,
राजाजीपुरम, लखनऊ-२२६०१७

: प्राप्ति-स्वीकार :

डेरा-बस्ती का सफ़रनामा (उपन्यास): **डॉ. सतीश दुबे**, दिशा प्रकाशन, १३८/१६, त्रिनगर, नयी दिल्ली-११००३५. मू. २०० रु.

विजया (उपन्यास): **निर्भय मल्लिक**, यूनिक प्रकाशन, ९/२/१, पश्चिम घोष पाड़ा रोड, कांकिनाड़ा बाजार,
उत्तर चौबीस परगना (प.बं.). मू. २५१ रु.

यातनागृह (क.सं.): **मनोज कुमार 'प्रीत'**, अयन प्रकाशन, १/२०, महरौली, नयी दिल्ली-११००३०. मू. १२० रु.

नयन दीप (क. सं.): **शांति अग्रवाल,** कादंबिनी क्लब, वेंगलराव नगर, हैदराबाद-५०००३८. मू. १०० रु.

सुनामी सड़क (ल.सं.): **चेतना भाटी,** संजीव प्रकाशन, ३६१३, दरियागंज, नयी दिल्ली-११०००२. मू.२०० रु.

हिंदी कहानी : बीसवीं सदी (गद्य): **श्याम गोविंद**, आत्म रचना प्रकाशन, ई/२४, ऋषिनगर, उज्जैन (म.प्र.). मू.२०० रु.

अंधी चाल (गद्य/पद्य.): **सदाशिव कौतुक,** साहित्य संगम, श्रमफल, १५२०, सुदामानगर, इंदौर-४५२००९. मू.१००रु.

चिल्लर चिंतन (व्यंग्य): **अनुज खरे,** बोधि प्रकाशन, ऐंचारा बिल्डिंग, सांगासेतु रोड, सांगानेर, जयपुर, मू.१५० रु.

असो क्यऊँ हुइ रयोज् (निवाड़ी क.सं.):**सदाशिव कौतुक,** साहित्य संगम, श्रमफल, १५२०, सुदामानगर, इंदौर-४५२००९. मू.१००रु.

वक़्त को आईना चाहिए (ग़.सं.): **स्व. अब्दुर्रव सदा**, वैभव प्रकाशन, अमीनपारा चौक, रायपुर-४९२००१. मू.१०० रु.

तेरी याद में.... (ग.सं.): **रचना एहसान**, वैभव प्रकाशन, अमीनपारा चौक, रायपुर-४९२००१. मू.१०० रु.

आढ़े-तिरछे तीर (क.सं.): **रमेश मनोहरा**, आयाम प्रकाशन, शीतला गली, जावरा, रतलाम-४५७२२६. मू.२००रु.

हिंदी के जीवनीपरक उपन्यास, एक अध्ययन : **डॉ. संगीता सहजवानी**, अमन प्रकाशन, १०४ए/११८,
रामबाग, कानपुर-२००१२. मू.२५० रु.

किरण देवी सराफ ट्रस्ट, मुंबई के सौजन्य से प्रकाशित पुस्तकें

महिलाओं के अधिकार, कानून के दायरे में (लेखादि) : **अलका पांडेय.** मू. ३०० रु.

मुंबई की बात निराली (गद्य): **विनोद चौमाल.** मू. ७५ रु.

कहें कपिल कविराय (कुंडलियां) : **गीतकार कपिल कुमार.** मू. १११ रु.

काव्य-मंच (क.सं.) : **गीतकार हरिश्चंद्र.** मू. १०० रु.

शिशु-गीत (बाल-गीत सं.) : **गीतकार हरिश्चंद्र.** मू. ६० रु.

दश्ते-तमन्ना (ग़.स.) : **मरयम ग़ज़ाला.** मू. १०० रु.

कहानी

मुक्ति

पुलिस लाईन में जैसे ही पहला घंटा बजा राजेश की नींद खुल गयी. तभी दूसरे, तीसरे और चौथे घंटे की घनघनाती आवाज़ उसके कानों में घुल गयी. एक घंटे पहले तीन घंटे बजे थे, तब भी उसकी नींद खुल गयी थी. लेकिन वह यह सोचकर फिर सो गया था कि अभी तो काफी रात बाकी है.

रोज़ तो वह पांच बजे जागता था, और छः तक पहुंच जाता था चाय के खोके पर. पिताजी बाल्टियां उठाकर निकल जाते ताज़ा दूध लेने, और वह भट्टी चेताकर बना उठता था चाय. अब तक दो चार ग्राहक भी आकर खोके के सामने बैठ चुके होते. उसके हाथ मशीन की गति से चाय, शक्कर, दूध डालकर टी-पॉट में उबलती चाय में चीनी का कप घुमा उठते. जब चाय ठीक तरह से घुट जाती वह संतुष्ट हो जाता तो केटली में छानकर ग्राहकों की ओर बढ़ा उठता. ग्राहक खड़े-खड़े ही चाय सुड़कते, पैसे थमाते और रास्ते से लगते. और वह नये ग्राहकों के लिए चाय खौलाने लगता.

यही कुछ करते-करते तीन साल हो गये हैं उसे. अब तो उसके हाथों में चाय की कला का भी समावेश हो गया है. उसके होटल की चाय पीने के लिए दूर-दूर से लोग आने लगे हैं. जो व्यक्ति एक बार चाय पी गया बस दुबारा से बंधकर रह गया. चाय का पहला घूंट ही ग्राहक को तृप्ति के बिंदु पर पहुंचा देता. यही कारण है कि उसके हाथों की चाय पीकर फिर लोग कहीं चाय पीना पसंद नहीं करते. आजकल तो उसका खोका दिनभर चहकता रहता है. अल सुबह खुलने से बंद होने तक खोका ग्राहकों से घिरा रहता, और वह चुपचाप अपनी धुन में चाय बनाता रहता.

तीन साल पहले उसके पिताजी चलाते थे इसी खोके को, तब यह बात नहीं थी. पूरे दिन में पांच किलो दूध मुश्किल से निकल पाता. बड़ी मुश्किल से घर का ख़र्च चलता. दुर्व्यवस्था घर में पैर पसारे ऊंघती रहती.

बी. एस. सी. करने के बाद कई सालों तक लगातार नौकरी के लिए प्रयास करता रहा था वह. हर बार इसी उम्मीद में आवेदन करता कि किसी विभाग में कोई पद उसकी गिरफ़्त में आ जाये. महिने पर बंधी हुई ऐसी रकम मिलने लगे जो सारी आशंकाओं से परे हो. मिलने की गारंटी हो. घर का ख़र्च आराम से चल निकले. जीवन की ज़मीन का कुछ हिस्सा ही समतल हो जाये. जिसमें वह आराम से हाथ पैर फैलाकर सुख की नींद सो सके. अभाव, चिंता और सामान्य समस्याओं के झाड़-झंखाड़ उखड़ जायें. बस इससे ज़्यादा उसे कुछ चाहिए भी नहीं था, और यही कुछ क्या कम था. जहां सुबह-शाम की रोटियों का जुगाड़ बमुश्किल हो वहां खड़े होकर इससे अधिक सोचा भी क्या जा सकता है. यही कुछ तो स्वर्गिक सुख से कम नहीं है. आकाश के तारे तोड़ने जैसा चक्रवर्ती सम्राट बनने, किला जीतने या सातों सुख पा जाने जैसी कल्पना थी उसके लिए.

// महेश कटारे 'सुगम' //

उसे मालूम है उसने पढ़ाई कैसे पूरी की. ग़रीब छात्र की हैसियत से फ़ीस माफ होती रही. लायब्रेरी की किताबें, मित्रों का सहयोग और प्राध्यापकों के वरदहस्त ने इस सफलता का ताला खोलने के लिए हमेशा कुंजी का कार्य किया, हिम्मत को बढ़ाया. प्रोत्साहित किया. अपनी मेहनत और लगन से सीढ़ी दर सीढ़ी चढ़ता हुआ आज यहां तक आ पहुंचा. बी. एस. सी. करने के बाद संतोष की सांस ली थी उसने, और पढ़ाई को यह सोचकर विराम दे दिया था कि इससे अधिक डिग्रियां उसके बूते के बाहर हैं, और फिर इन परिस्थितियों में इतना भी क्या कम है. अब आराम से कोई ऐसी नौकरी मिल सकती है जिसके सहारे सारा जीवन आराम से निकाला जा सकता है, और फिर पिताजी की बूढ़ी अवस्था और अपनी गृहस्थी भी उसे जल्द से जल्द अपने पैरों पर खड़ा करने के लिए प्रेरित कर रही थी.

उसे मालूम है पिताजी ने भी कुछ कम नहीं भोगा.

चाय के खोके में सारी जिंदगी गुज़ार दी. इतनी पूंजी कभी न जुड़ सकी कि किराये की दुकान लेकर होटल खोल सके. पहले तो इसी खोके से इतनी आमदानी हो जाती थी कि आराम से गुज़ारा चल जाता था. बढ़ती हुई महंगाई और बढ़ते हुए परिवार के सामने वही आमदनी सिकुड़ती सी गयी. वह तो घर का कच्चा मकान था जिसके कारण शहर नहीं छोड़ना पड़ा वर्ना गृहस्थी को कनस्तर में समेटे न जाने कहां-कहां की ख़ाक छाननी पड़ती. फुटपाथ पर आ जाते तो भी कोई बड़ी बात न होती.

कई इंटरव्यू देने के बाद भी कोई बात बनती न देखकर उसने प्रायवेट स्कूल की नौकरी ज्वॉयन कर ली थी. दो साल तक भुगता भी था उस नौकरी को. पंद्रह सौ पर हस्ताक्षर करवा कर पांच सौ रुपये थमा दिये जाते हर महिने. वेतन लेते वक़्त उसे ऐसा लगता जैसे उसकी रगों का ख़ून निकलकर संचालक के जिस्म में समाता जा रहा हो. यही कारण था संचालक मोटा और थुलथुल होता जा रहा था और वह दिन प्रतिदिन दुबला और शक्तिहीन. फिर भी परिस्थितियों की परिधि में कैद वह झटपटाता रहता. अन्य पदों के लिए आवेदन करता रहता. इंटरव्यू देता रहता. हर बार इंटरव्यू से लौटने के बाद वह पदस्थापना के प्रति आश्वस्त सा हो जाता. लेकिन हर बार निराशा का जहर उसके हिस्से में आता, जिसे वह चुपचाप पचा जाता. और कई वर्षों तक इसी निराशा के जहर को पचाते उसकी आशाओं का जिस्म एक दिन नीला पड़ गया. अरमानों का दम घुट गया. साहस निश्चेष्ट हो गया. शक्ति शांत पड़ गयी. और आख़िर में एक दिन उसने नौकरी की इच्छा की अर्थी फूंककर चाय के खोके की शरण ग्रहण कर ली.

लाख कोशिशों के बावजूद भी कई दिनों तक वह नहीं भूल सका था कि वह पढ़ा लिखा नहीं है. जब भी जूठे प्यालों को बटोरता हीनता उसे डसने लगती. कप-प्लेट धोते समय हर बार उसे अहसास होता वह कप-प्लेट नहीं अपने पढ़ाई-लिखाई के संस्कारों को धो रहा है. मक्खियों से भिन-भिनाते खोके में पोंछा लगाते समय महसूसता कि वह अपने ज्ञान विज्ञान से भरे मस्तिष्क को पोंछा लगाकर साफ़ कर रहा है. दूध में जब वह कोंचा चलाता तो कोई कोंचा उसके अंदर भी

महेश कटारे 'सुगम'

२४ जनवरी १९५४, पिपरई, जिला ललितपुर (उ.प्र.)

लेखन : हंस, साक्षात्कार, प्रयोजन, वर्तमान साहित्य, सरिता, भू-भारती, देश का संदेश, कहानियां मासिक, चयन, सुमन सौरभ, लोट पोट, पराग चकमक, सहेली, देवपुत्र, अनामा, कथाबिंब, समाज कल्याण, शुचिप्रिया, इंगित आदि हिंदी भाषी पत्र-पत्रिकाओं में समय-समय पर रचनाओं का प्रकाशन.

प्रकाशन : प्यास (कहानी संग्रह), गांव के गेंवड़े (बुंदेली ग़ज़ल संग्रह).

प्रसारण : आकाशवाणी भोपाल एवं ग्वालियर से रचनाओं का प्रसारण.

पुरस्कार : स्वदेश (रामनारायण शास्त्री) कथा पुरस्कार, स्व. विजू शिंदे कथा पुरस्कार, स्व. अंबिका प्रसाद दिव्य-पुरस्कार आदि.

विशेष : रत्न सागर प्रकाशन दिल्ली द्वारा प्रकाशित माध्यमिक पाठ्यक्रम के छठे भाग में 'बंजारा' नामक कविता संग्रहीत.

संप्रति : स्वास्थ्य विभाग (म.प्र) में प्रयोगशाला तकनीशियन.

चल उठता. यह सोचते हुए उसे ख़ुशी होती कि यदि कोंचा इसी तरह चलता रहा तो निश्चित रूप से उसके अंदर जगी हुई इच्छाओं की कालिख खुरच जायेगी और वह अपने नये जीवन के साथ नयी भाषा लिख सकेगा. एक मजदूर की, एक मेहनतकश इंसान की भाषा.

उसका खोका चल निकला था. दूध की खपत पांच किलो से बढ़कर पचास किलो पर आ पहुंची थी. पैंट शर्ट शरीर से उतरकर किसी खूंटी पर आ टंगी थी. बनियान और तहमद उसकी स्थायी वेश-भूषा बन गयी

थी. पैंट-शर्ट में वह अपने आपको हमेशा बंधा-बंधा सा महसूस करता, कपड़े बार-बार पढ़े-लिखे होने की याद को ताज़ा कर जाते. बनियान तहमद में ऐसा कुछ नहीं, खुलकर हाथ पैर चलते हैं. कप-प्लेट धोने से लेकर पोंछा लगाने तक अब उसे किसी हीनता का सामना नहीं करना पड़ता. अब तो उसके दिमाग की स्लेट बिल्कुल साफ़ हो चुकी थी. उसने नये सिरे से उस पर कप, प्लेट, दूध, चाय, चीनी, लिखना शुरू कर दिया था. उबले हुए दूध पर मलाई की मोटी परत उतारते समय उसकी बांछें खिल जातीं. बिना खाये ही तृप्ति की एक मोटी रेखा दिल पर पसर जाती. मलाई के दूध का घी सारे परिवार की रोटी चुपड़ने की स्थायी समस्या का समाधान बन चुका था.

उसने कई बार सोचा है अपनी उस उम्र के बारे में, जिसे उसने पढ़ाई-लिखाई पर बर्बाद किया. क्या उपयोग है उस पढ़ाई का. चाय बनाने का काम तो बिना पढ़े ही किया जा सकता था, फिर व्यर्थ पैसा और समय किस लिए जाया किया. सिर्फ़ डिगरियां हासिल करने के लिए न! वे डिगरियां जो बिल्ली का गू हैं. न जिससे लीपा जा सकता है, और न जिसे कंडे थापने के उपयोग में लाया जा सकता है. कभी डिगरियां पाने की जितनी ख़ुशी हुई थी उसे, आज उतने ही विषाद से भर उठा था वह. डिगरियां पढ़े-लिखे होने का सबूत भर हैं. और उनकी कोई उपयोगिता नहीं. कोई मूल्यांकन नहीं. उन्हें तो सिर्फ़ मढ़वाकर दीवाल पर लटकाया जा सकता है. और इस अहं में फंसकर छोटे-छोटे कामों से भागा जा सकता है. बस. इसके अलावा क्या देती हैं, डिगरियां. बिकती भी तो नहीं है. कोई खरीददार मिल जाता तो कभी का बेच देता इस कूड़ा-करकट को.

एक दिन उसे ध्यान आया था डिगरियों पर सरकार लोन देती है. स्वरोजगार खोलने के लिए प्रेरित करती है. उसने भी दुनिया भर की भाग-दौड़ और पैसा ख़र्च करके आवेदन कर दिया था. लेकिन क्या हुआ, लघु उद्योग कार्यालय के चक्कर लगा-लगा कर पैरों में छाले पड़ गये. वह समझ चुका था सरकार की सारी योजनाएं सिर्फ़ छलावा है, या फिर उनके लिए हैं जो जोड़-तोड़ की राजनीति की हर गली से वाकिफ हों.

उसने चारपाई छोड़ दी. आज की रात तो अर्धनिद्रावस्था में ही बीती थी. सारी रात स्वप्न देखता रहा था वह नये होटल के. हालांकि इस नये होटल का स्वप्न अब मात्र स्वप्न नहीं था, एक जीती जागती सच्चाई थी. ग्राहकों को खड़े-खड़े चाय सुड़कते देख उसे ख़ुद बुरा लगता था. कई बड़े-बड़े लोग तो चाहते हुए उसके हाथ की चाय पीने को मोहताज थे. कारण वही था बैठने की व्यवस्था न होना और खड़े होकर खाना-पीना एक तो उनकी प्रतिष्ठा को बट्टा लगाता. दूसरे उनकी आदत में शुमार भी नहीं था. कई लोग कई बार शिकायत भी कर चुके थे, इस अव्यवस्था की.

हालांकि वह भी नहीं चाहता था कि ग्राहक परेशान हों, खड़े होकर चाय पियें. और फिर ग्राहक उसके लिए ग्राहक न होकर किसी देवता से कम नहीं थे. वह जानता है इन्हीं की दम पर उसकी रोजी चल निकली है. भूखों मरता परिवार एक बार फिर जीवन की ललक से भर उठा है. थिगड़े लगे कपड़ों को लपेटे रहनेवाले भाई-बहिन, पत्नी बढ़िया वस्त्रों से सज-धज गये हैं. कच्चे छप्पर और पाटौर के स्थान पर दो काम चलाऊ पक्के कमरे खड़े हो गये हैं. आज जो कुछ भी है इन्हीं ग्राहकों की बदौलत. फर्लांग दो फर्लांग से कई होटलों को पार कर उसके खोखे तक आते हैं. पैसे भी पूरे देते हैं. तो सुविधाएं प्राप्त करना भी उनका अधिकार है.

सारी बातें उसे कई दिनों से परेशान कर रही थीं. कई दुकानों को वह देख चुका था. जगह अच्छी तो किराया इतना कि उसके बूते के बाहर. किराये का हिसाब-किताब ठीक बैठता तो दुकान एकांत की ओर खिसक उठती.

कई महिनों की भाग-दौड़ के बाद उसे यह दुकान मिल पायी थी. पोस्ट ऑफिस के ठीक सामने. हालांकि किराये की खरोंच कुछ गहरी थी, फिर भी उसने यह सोचकर आश्वस्त कर लिया था अपने आपको कि मरहम भी इसी में निकलेगा. और वह यह बात भली भांति जानता है कि अच्छा मरहम यदि पास हो तो कोई भी खरोंच अधिक दिन तक जिस्म में बनी नहीं रह सकती.

रात को उसने अच्छी तरह से दुकान की सफाई की थी. धोया, पोंछा, चमकाया था दीवालों को. कई सालों से बंद दुकान एक बार फिर प्रकाश की रोशनी में नहा उठी थी. भट्टी भी वह रात को ही बना कर लौटा था. कुछ फर्नीचर भी उसने सजा दिया था दुकान में. नये

भगोने, बिस्कुटों के लिए नयी बरनियां, नये कप-प्लेट और जो कुछ भी सामर्थ्य के अनुसार कर सकता था किया था उसने.

रात को बारह, साढ़े बारह बजे लौटा था घर. चारपाई पर लेटने के बावजूद भी पूरी तरह सो नहीं सका था. ख़ुशी की लहर रह-रह कर शरीर को रोमांचित कर जाती. और वह आकाश में मजबूत डैनों के सहारे उड़ उठता. ठीक अपने विचारों की तरह जिसकी तह में होगा उसका फलता-फूलता धंधा, निरंतर प्रगति की सीढ़ियां तय करने का संकल्प, अपने ग्राहकों की संतुष्टि का शहद, मेहनत और लगन के प्रति ईमानदारी और निष्ठा.

फरागत से निपटने के बाद उसने स्नान किया और जाकर संदूक से कलैंडर निकाल उठा. नये होटल में वह वर्षों से सहेजे कुछ कलैंडर और तस्वीरें भी टांग देगा. यहां रखे-रखे इन पर धूल ही चढ़ रही है, और होगा भी क्या. यही सोचकर वह कलैंडरों को पलट उठा. कुछ छांट कर एक तरफ रख लिये. तभी उसकी नजर संदूक की तह में रखी मढ़ी हुई डिगरियों पर गयी. उसका मोह एक बार फिर अंगड़ाई ले उठा. उसे फिर ध्यान हो आया कि वह बी.एस.सी. पास है. उसने बड़ी आत्मीयता से बी.एस.सी. की डिग्री उठायी. उसे पढ़ा, नीचे कुलपति के बड़े-बड़े हस्ताक्षरों को उसने एक सरसरी नजर से देखा. और फिर काफ़ी देर तक देखता रहा. किंतु अचानक ही उसकी दृष्टि जन्म दिनांक पर जाकर अटक गयी. उसने मन ही मन हिसाब लगाया तो पाया कि वह अब तो दो माह ओवर ऐज हो गया है. सोचते ही उसके चेहरे पर एक गहरी निराशा और विषाद के मिले जुले भाव तैर उठे. वह सोचता रहा, काफ़ी देर तक सोचता रहा, न जाने क्या. और तभी उसे न ज़ाने क्या सूझा सारे प्रमाण पत्रों की चौखटें उधेड़ डालीं. कांच को फिर संदूक में सहेज कर रख दिया. प्रमाणपत्रों के काग़ज़ों और चौखटों को तोड़-मरोड़ कर एक थैले में भर उठा.

पांच बज गये थे. लोगों की आमदरफ़्त जारी हो चुकी थी. कुछ दोस्त आकर होटल पर जमा हो गये थे. बैठे हुए लोगों के मुंह पर संतोष के भाव थे. नये होटल की प्रशंसा के चर्चे सभी की जुबानों से झर रहे थे. तभी उसने एक टेबिल पर प्रमाणपत्रों और टूटे हुए लकड़ी के चौखटों को उड़ेल दिया. कुछ मित्र डिगरियों की दुर्दशा देखकर हतप्रभ थे. तभी उसने भट्ठी में कोयले डाले और प्रमाण पत्रों को जलाकर इत्मीनान से भट्ठी सुलगा उठा. उसके चेहरे पर एक कड़वी मुस्कान के साथ आत्म-संतोष के भाव स्पष्ट थे.

हॉस्पिटल कैंपस,
कुरवाई, जिला : विदिशा (म.प्र.)
मो- ९९८१८४६३२८

दो ग़ज़लें

सुशांत सुप्रिय

(१)

मैं तुम्हें वो ग़ज़ल सुनाता हूं,
जिसे अपने आस-पास पाता हूं.
युग है जलती हुई चिता जैसे,
मरघटी धुआं पिये जाता हूं.
रिश्ते स्वार्थ के समंदर हैं,
मतलबी शार्क इनमें पाता हूं.
परों से छिन गयी उड़ान है अब,
दर्द का क्रॉस ढोता जाता हूं.
जड़ें उदास हैं, जीवन की फुनगियां हैं दुखी,
युग एक लंबे सूर्य-ग्रहण जैसा पाता हूं.

(२)

साथ बैठे हो, कोई बात निकाली होती,
चुप से बेहतर है कुर्सी बगल की खाली होती.
मेरे हिस्से में क्यूं है आपका रूखा अपरिचय,
आपके लब हिलते हमने बात संभाली होती.
कुछ तो संवाद होता, मौन है अब चुभने लगा,
काश थोड़ी-सी इंसानियत बचा ली होती.
गुम है हर शख़्स ख़ुद में, बंद है हर दरवाज़ा,
दौर ने दीवार में खिड़की तो निकाली होती.
या रूखे होते हम भी तो सही रहता सब कुछ,
तब कंक्रीट के जंगल में घर की राह ही पा ली होती.

द्वारा श्री एच.बी.सिन्हा,
५१७४, श्यामलाल बिल्डिंग,
बसंत रोड, नयी दिल्ली-११०५५.

कहानी

अपराधबोध

अस्पताल के पलंग पर अर्द्ध निद्रा की अवस्था में हिसाब लगा रही हूं अपने रिश्तेदारों, परिचितों, मित्रों में से कौन-कौन मेरी मिजाजपुर्सी के लिए यहां आया है. निराशा हाथ लगती है क्योंकि यह आंकड़ा काफ़ी कम है. यह भी तो सच है जब अपने पुत्र विदेश में जा बसे हों तो दूसरों को क्या ज़रूरत पड़ी है खोज ख़बर लेने की. आज की व्यस्त ज़िंदगी में सब अपनी परेशानियों से ही निजात पाने के तरीके ढूंढ रहे होते हैं. किसे फुर्सत है मित्रों, संबंधियों के बारे में जानकारी रखने की! वह जमाना गया जब किसी पड़ोसी, परिचित तक की छोटी सी तकलीफ़ पर सब इकट्ठे हो जाया करते थे. हर संभव मदद करने में लग जाते थे. एक अनोखा भाईचारा होता था, अब वह सब काल्पनिक बातें लगती हैं.

अधमुंदी पलकों के आवरण से निकलकर मेरी चेतना विदेश में बसे दोनों बेटों को देख रही है जो अपने-अपने परिवारों में व्यस्त हैं. जब पति ने उन्हें मेरी बीमारी के बारे में बताया तबसे उनके फ़ोन हर सप्ताह आने लगे हैं जबकि पहले महीने में एक बार आते थे. दोनों की बातचीत का विषय एक ही होता है- 'मां, अपना ख्याल रखना. अब इस उम्र में काम मत किया करो, सारे दिन के लिए नौकरानी रख लो. आखिर पैसे किस लिए होते हैं? अब तुम पर कोई ज़िम्मेदारी तो है नहीं क्यों बेकार का तनाव पालती रहती हो? हमारे यहां की ज़िंदगी तो बेहद कठिन है. पति पत्नी दोनों नौकरी में पिसते रहते हैं तब कहीं बच्चों की अच्छी देखभाल हो पाती है. इतनी महंगाई है यहां कि तौबा, उस पर किसी काम के लिए नौकर नहीं होते. सारे कार्य स्वयं करने पड़ते हैं. थककर चूर हो जाते हैं. जैसे ही कुछ समय निकल पाया तुमसे मिलने आयेंगे....'

मैं जानती हूं कितना समय निकाल पायेंगे मेरे लिए! पिछले पंद्रह वर्षों में दो बार आये हैं. पंद्रह दिन रहे और पंद्रह बार बताया कि यहां आने में उनका लाखों रुपया किराए में ही ख़र्च हो गया. उनकी बातों से अनजाने ही मेरे भीतर अपराध भावना आ गयी थी. हमारे कारण इनका इतना पैसा व्यर्थ गया. विदेशी धरती पर रहते-रहते उनके संस्कार भी विदेशी होने लगे थे. स्वार्थ, संवेदनहीनता बढ़ती जा रही थी.

न चाहते हुए भी मैं पड़ोसन रीना की बातों को याद करने लगती हूं. जबसे उसके पति की मृत्यु हुई है दोनों बेटियां बारी-बारी से उसे अपने घर ले जाती हैं. उसकी सभी ज़रूरतों, सुख सुविधाओं को पूरा करती हैं. किसी तरह का कोई अभाव, कष्ट उसे नहीं होने देतीं. तब रीना ने कहा था- 'अगर ऐसी बेटियां हों तो बेटे न होने का कोई मलाल नहीं होता. आज के जमाने में तो सभी देख रहे हैं बेटे किस तरह मां बाप को असहाय छोड़ मोटी तनख़्वाह वाली नौकरियों के पीछे दौड़ते हैं. हम ख़ुशकिस्मत हैं बेटों से बेहतर बेटियां पाकर.' कलेजे में हूक सी उठने लगती है काश, हमारी भी एक ऐसी बेटी होती तो आज इस हालत में देखकर दूर बैठी केवल बातें न बनाती बल्कि साथ रहकर सेवा सुश्रुषा करती. लेकिन सबका भाग्य एक-सा कहां होता है!

॥ नरेंद्र कौर छाबड़ा ॥

अचानक महसूस होता है पलंग के नीचे पड़े गंदगी के डिब्बे में से दो नन्हें हाथ मेरी ओर गुहार लगा रहे हैं- 'मम्मी, मुझे बचा लो.... मत मारो मुझे.... मैं मरना नहीं चाहती.....' यह आवाज़ तेज़ होती जा रही है. मैं अपने कानों पर हाथ रख इस आवाज़ से पीछा छुड़ाना चाहती हूं परंतु आवाज़ अब और तेज़ हो गयी है. डिब्बे में दो की बजाय चार हाथ दिखाई दे रहे हैं- 'मम्मी मुझे बचा लो- मत मारो मुझे - ' मैं पसीने से तर हो गयी हूं. नर्स आकर पूछती है- 'क्या हुआ?'

'कुछ नहीं, एक बुरा सपना देखा था, डर गयी थी.'

वह इंजेक्शन देकर कहती है- 'आराम करो टेंशन नहीं लेना.' इंजेक्शन का असर होने तक मैं फिर से

अतीत के गलियारे में पहुंच जाती हूं. शादी के बाद बिदा होकर जब ससुराल की दहलीज पर पहुंची तो सास ने आशीर्वाद दिया- 'दूधो नहाओ, पूतो फलो.' इसे एक सामान्य आशीर्वाद मान मैं मुस्करा दी थी. सभी बुजुर्ग महिलाएं नववधू को यही आशीर्वाद तो देती हैं. एक तरह से यह एक मुहावरा ही बन गया है. परिवार में हम पति, पत्नी, सास, ससुर के अलावा एक देवर व एक ननद बस इतने ही प्राणी थे. सास ने कभी रोक टोक, प्रतिबंध नहीं लगाये. मैं उनकी उदारता पर स्तब्ध थी. ननद भी मां जैसी मिलनसार हंसमुख व स्वतंत्र. दो वर्ष का समय बीतने का अहसास ही नहीं हुआ. वैवाहिक जीवन को हम सही मायने में एन्जॉय करते रहे.

जिस दिन मेरे गर्भवती होने की ख़बर सास को मिली उन्होंने मुझे हाथों हाथ लिया. प्रेम से आलिंगनबद्ध करते हुए ढेरों नसीहतें दे डालीं- 'बहू, अब तुम रसोई में मत आना. इन दिनों दिल ख़राब रहता है. रसोई के मिर्च-मसालों की महक से अधिक उबकाई आती है. किसी तरह का वजन नहीं उठाना. धीरे चलना, गिरना पड़ना नहीं. आख़िर हमारे कुल का वारिस आ रहा है.' उनकी फिक्र व देखभाल अच्छी लगती लेकिन आखरी वाक्य सुनकर मैं परेशान हो जाती. अगर लड़की हो गयी तो? पति भी बेहद उत्साहित व प्रसन्न थे अतः अपनी इस शंका को उनके सामने रखने की हिम्मत नहीं जुटा पायी. जी मिचलाने, उल्टियां करने, आराम करने, मन बहलाव के लिए कुछ सैर करने आदि में दो महीनों का वक़्त बीत गया. अगले दिन ही सास का फरमान हुआ- 'अस्पताल जाकर चेकअप करा लो, लड़का है तो ठीक वरना गर्भपात करवा के ही आना.....'

मेरे पैरों तले से जैसे ज़मीन सरक गयी. मां जी यह क्या कह गयीं? पति की ओर सहायता व उम्मीद की नजरों से देखा तो वहां विवशता तथा बेचारगी के स्पष्ट भाव तैर रहे थे. एकांत होते ही वे बोले- 'वीणा, मां दिल की बुरी नहीं है, दरअसल हमारे खानदान में परंपरा चली आ रही है परिवार में पहली लड़की को दुर्भाग्यपूर्ण मानते हैं अतः उसे पैदा ही नहीं होने देते. हां एक लड़के के बाद लड़की के जन्म को सहजता से लिया जाता है. तुम चिंता न करो सब ठीक हो जायेगा-' अब मेरे पास कहने सुनने के लिए क्या रह गया था? क्या कहती कि स्वयं को इतने उदार व स्वतंत्र विचारों वाले माननेवाले लोग इतने पोंगापंथी, रूढ़ियों को आंखों मींच अपने से चिपकाये हुए हैं!

अगले दिन पति के साथ मैं अस्पताल गयी. जांच परीक्षण के बाद वही हुआ जिसका मुझे डर था. गर्भ में लड़की पल रही थी. पति के इशारे पर मुझे ऑपरेशन थिएटर ले जाया गया जहां उस नन्हीं जान को मेरे

नरेंद्र कौर छाबड़ा

२ अक्तूबर, १९५०, विज्ञान स्नातक

लेखन : पिछले २० वर्षों से देश के सभी स्तरीय पत्र-पत्रिकाओं में रचनाएं प्रकाशित. कुछ संग्रहों में कहानियां प्रकाशित.

विशेष : वर्ष १९९१ से १९९३ तक आकाशवाणी की कार्यक्रम सलाहकार समिति की सदस्य, वर्ष १९९१ से १९९४ तक बाबासाहेब आंबेडकर मराठवाडा विद्यापीठ की हिंदी पाठ्यक्रम समिति की सदस्य, बिहार की दिनकर साहित्य संस्था की ओर से 'लघुकथा मार्तंड' की मानद उपाधि. लायन्स क्लब द्वारा दो बार सर्वश्रेष्ठ महिला पत्रकार का पुरस्कार.

पुरस्कार : अनेक संस्थाओं द्वारा सम्मानित, कहानियों व संग्रहों पर कई पुरस्कार प्राप्त.

अन्य : लेखन के अलावा चित्रकारी, हस्तकला, बागवानी, समाजसेवा में भी सक्रिय. वर्ष १९९६ में रामा होटल की आर्ट गैलरी में चित्र प्रदर्शन. आकाशवाणी से नियमित रचनाओं का प्रसारण. वर्ष १९९२ से १९९९ तक लोकमत समाचार में फीचर एडीटर, सदस्य महाराष्ट्र पत्रकार समिति.

संप्रति : स्वतंत्र लेखन, समाजसेवा.

शरीर से अलग कर कचरे के डिब्बे में फेंक दिया गया. बेबस, असहाय सी मैं आंसू बहाती रह गयी. प्रथम बार मां बनने के, मातृत्व सुख प्राप्त करने के अहसास को कितनी बेदर्दी से रौंद डाला गया था. घर पहुंचने पर मेरी सूजी आंखें देखकर सास ने हमदर्दी जताई थी- 'दिल छोटा न करो बहू, उसके घर में देर है अंधेर नहीं. देखना अगली बार ज़रूर लड़का ही होगा.' मैं फफक कर रो पड़ी तो उन्होंने सिर पर हाथ फेरते हुए सांत्वना दी.

छः महीने बीतने के बाद मैं दोबारा गर्भवती हुई. इस बार परिवार में सदस्यों के साथ-साथ मैं भी पूरी तरह आश्वस्त थी कि लड़का ही होगा. लेकिन जांच परीक्षण की प्रक्रिया के पश्चात जब डॉक्टर ने बताया गर्भ में लड़की है तो सभी के चेहरों पर मुर्दनी छा गयी. सास की नाराज़गी तो शब्दों में व्यक्त हो गयी- 'पता नहीं कैसी कोख़ है इसकी हर बार लड़की आ जाती है.' मैं अपना यह अपमान बर्दाश्त नहीं कर पायी. पहली बार अपना विरोध प्रगट करते हुए कह दिया- 'मांजी, क्या बेटे-बेटी के लिंग का फैसला कोख़ करती है? उसका कार्य तो बच्चे को पालना होता है, लिंग निर्धारण नहीं. फिर उसे आप क्यों कोस रही हैं?' जब गर्भपात कराने की बात आयी तो मैंने उसका विरोध किया लेकिन मेरी बात तो नक्कारखाने में तूती ही साबित हुई. मेरी एक न चली और फिर एक नन्हीं जान को मारकर कचरे के डिब्बे में डाल दिया गया. इस बार मैं शारीरिक व मानसिक रूप से भी टूट गयी थी. घर आकर बहुत रोयी थी पति से जब कहा- 'हम कब तक कन्या हत्या करके पाप करते रहेंगे?' तो उन्होंने कंधे थपथपा कर मुझे सांत्वना दी थी. इस बार सहज होने में मुझे काफ़ी वक़्त लगा था. बार बार नन्हें नन्हें हाथ नजर आते मानो मुझे पुकारकर कह रहे हों-'मम्मी, मुझे बचा लो. मैं मरना नहीं चाहती.'

तीसरी बार बेटे का जन्म हुआ तो घर परिवार में उत्सव सा माहौल बन गया. बैंडबाजे बजवाये गये, मोहल्ले में मिठाई बांटी गयी, ग़रीबों को खाना खिलाया गया, सास मेरी बलैयां लेती रही पोते की नजर उतारती रही. तब मुझे बेटे की मां होने का गर्व अनुभव हुआ. काश पहली बार ही बेटा हो जाता तो उस दुखद स्थिति का सामना न करना पड़ता. फिर वर्तमान की ख़ुशी में अतीत की कड़वी यादों को भुलाती हुई मैं बेटे के पालन-पोषण में व्यस्त हो गयी. दो वर्ष पश्चात जब दूसरे बेटे का जन्म हुआ तो सास ने प्यार से कहा- 'देखा मैंने कहा था न उसके घर देर हैं, अंधेर नहीं.' दो बेटों की मां बनने पर मुझे घर बाहर जो इज़्ज़त, मान, प्यार मिलने लगा उसने मेरी सोच ही बदल दी. मैं भी बेटी को महत्त्वहीन मानने लगी. और दो बेटों के परिवार को सीमित कर लिया. जब कभी मेरी मुलाकात ऐसी महिला से होती जिसे केवल लड़कियां थीं तो मुझे उस पर तरस आने लगता. उसे मैं बेचारी व अभागिन मानने लगती. समय के साथ-साथ यह संस्कार भी पक्का होता गया.

दोनों बच्चों की बेहतरीन परवरिश में मैं व्यस्त हो गयी. उनकी हर मांग हर ख्वाहिश पूरी करने की सदा मेरी कोशिश रहती. उन्हें कोई अभाव न हो इसका प्रयत्न करती. सास को तो वैसे हो दोनों पोते बेहद प्रिय थे अतः उन पर कोई प्रतिबंध, टोकाटाकी का कोई प्रश्न ही नहीं था. बच्चे छोटे थे उन्हीं दिनों सास, ससुर तीर्थयात्रा पर गये. दुर्भाग्यवश रास्ते में उनकी बस दुर्घटनाग्रस्त हो गयी तथा दोनों की वहीं मृत्यु हो गयी. अब बच्चों की परवरिश की ज़िम्मेदारी पूरी तरह मुझ पर आ गयी थी. उन्हें बेहतर शिक्षा के साथ-साथ बेहतर वातावरण प्रदान करने के इरादे से हमने मोहल्ला भी बदल लिया. जहां उच्च वर्ग के लोग रहते थे उसी कॉलोनी में मकान ले लिया. बच्चों को अच्छे सहयोगी, मित्र भी मिलने चाहिए क्योंकि उनके चरित्र, स्वभाव संस्कार पर इन सबका भी प्रभाव पड़ता है यही सोचकर यह कदम उठाया.

दोनों ही बच्चे मेघावी थे. स्कूली शिक्षा अपनी-अपनी कक्षाओं में अव्वल होकर उन्होंने प्राप्त की. उसके पश्चात उच्च शिक्षा के लिए देश की जानी मानी संस्थानों में दोनों को ही दाख़िला मिल गया. यहां की शिक्षा काफ़ी महंगी थी. आम भारतीय की तरह हमारी सोच भी यही थी कि बच्चों के सुखद भविष्य का निर्माण हर अभिभावक का कर्तव्य है. आर्थिक स्थिति में उतार चढ़ाव आते रहे जिसके कारण कई बार हम अपनी-ज़रूरतों में कटौती कर लेते लेकिन उनकी शिक्षा में

कोई अभाव नहीं आने दिया. मन में विश्वास था दोनों की बढ़िया नौकरी लग जायेगी फिर उनके विवाह करके पोते-पोतियों की रौनक से अपना दिल बहलायेंगे. आदर्श परिवार की तरह जीवन जीयेंगे. बेटे समझदार हैं, मां बाप को परवरिश में जो कठिनाइयां आती हैं उन्हें समझते हैं. कभी-कभी कहते भी हैं- 'मां, मेरी नौकरी लग जाने दो फिर देखो मैं तुम्हारी सारी इच्छा, कामनाएं पूरी करूंगा. हमारी महंगी पढ़ाई के कारण तुमने अपनी ज़रूरतों को सीमित किया, तो कभी मन मारा हम सारा हिसाब चुकता कर देंगे.' मैं मुस्करा कर रह जाती अच्छा है इन्हें यह अहसास तो है वरना आजकल की पीढ़ी इतनी स्वार्थी हो गयी है केवल लेना जानती है.

बड़े बेटे का कोर्स पूरा होते ही उसे बहुराष्ट्रीय कंपनी में बढ़िया नौकरी मिल गयी. हम सबका ख़ुश होना स्वाभाविक था. साल भर उसे राजधानी में रहने के बाद विदेश जाने का आदेश दिया गया. वह बेहद प्रसन्न, उत्तेजित था. बेशक उसके कैरियर की यह बड़ी छलांग थी फिर भी हमारे भीतर जैसे कुछ दरक गया था. हमारी मनोस्थिति को जान वह बोला- 'आप लोग चिंता न करें. दो तीन साल में मैं वापस लौट आऊंगा.' दो साल बाद उसका फ़ोन आया अपने साथ काम करनेवाली विदेशी युवती के साथ उसने शादी कर ली थी. मन कसैला हो गया था. अपनी स्वार्थी प्रवृत्ति का पहला नमूना उसने दिखा दिया था. जन्मदाता थे अतः उसके उज्ज्वल भविष्य की शुभकामनाएं देते हुए बधाई दी.

अब हमारी सारी उम्मीदें छोटे बेटे पर आकर ठहर गयी थीं. कहीं वह भी बड़े के पदचिन्हों पर चलते हुए विदेश न चला जाये, इस सोच से हम स्वयं को असुरक्षित महसूस करने लगे. इसी भय व आशंका के कारण हमारा उसके प्रति स्नेह व फिक्र बढ़ गयी थी. उसकी छोटी-छोटी बातों का, सुविधाओं का ख्याल करने लगे. ग़ाहे-बग़ाहे उसे संयुक्त परिवार के फ़ायदे, मां-बाप के प्रति संतान के फर्ज जैसे विषयों पर संकेतात्मक उपदेश भी दे डालते. सालभर बीतने के बाद उसकी शिक्षा पूरी हुई और तभी वह धमाका हुआ जिससे हम डर रहे थे. किसी बड़ी प्रतिष्ठित विदेशी कंपनी ने उसे बहुत बढ़िया नौकरी के लिए चुना. हमारी हालत सांप छछूंदर जैसी थी. न तो उसे जाने के लिए कहने की हिम्मत हो रही थी और न रोकने की. हिम्मत करके मैंने कह दिया- 'बेटा, विदेश में अगर पैसा अधिक है तो महंगाई भी उतनी ही है. सिर्फ़ पैसों के लिए वहां अलग-थलग पड़े रहने से तो अच्छा है यहीं कोशिश करो. अपने देश में भी आजकल लाखों की नौकरियां मिलती हैं. अपने परिवार के साथ रहकर जो शांति सुकून मिलता है, वह विदेश में कहां मिल सकता है?' वह फौरन बोल उठा- 'मां, मैं वहां बसने थोड़े ही जा रहा हूं? दो चार साल रहकर पैसा कमा कर लौट आऊंगा. आख़िर तो मुझे यही रहना है आप लोगों के साथ.' थोड़ी सी आस बंधी थी उसकी बातों से.

दिन महीने और वर्ष बीतने लगे. चार साल बाद छोटे बेटे ने पत्र के साथ एक फोटो भेजी, जिसमें वह उसकी पत्नी और साथ में सालभर का बेटा था. उसने लिखा था कि अति व्यस्त दिनचर्या के कारण वह अपनी शादी व बेटे के जन्म के बारे में सूचित नहीं कर पाया. अगले साल वह परिवार सहित हमसे मिलने आयेगा कुछ दिनों के लिए. हमारे पैरों तले से जैसे ज़मीन सरक गयी थी. लगा था जीवन में भूकंप आ गया है. सब कुछ तहस नहस हो चुका है. आस के जो दिए आंखों में टिमटिमा रहे थे वे भी बुझ गये. अब तो इसका यहां हमारे साथ रहने का प्रश्न ही नहीं रहा. बेशक दोनों बेटों के इंद्रधनुषी स्वप्न फलीभूत हो गये थे और यह ख़ुशी की बात थी लेकिन वृद्ध मां बाप के लिए क्या बेटों का कोई कर्तव्य नहीं होता? यही बात दिल की गहराइयों में उतरती चली गयी. परिणामस्वरूप अवसाद, तनाव बढ़ते चले गये और बीमारियां अपना स्थान बनाने लगीं. पति भी उदास, चिंताग्रस्त रहने लगे. असहाय से हम मूक नजरों से एक दूसरे को देखते. अपनी परेशानियां भीतर समेटे हुए नीरस, उद्देश्यहीन सा जीवन जीने लगे थे.

पिछले सप्ताह मुझे दिल का दौरा पड़ा है. तब से अस्पताल में हूं. काफ़ी थकान, कमजोरी महसूस कर रही हूं. बेटों को ख़बर की तो उनकी ओर से केवल एहतियात बरतने की हिदायतें मिल रही हैं. बीमारी में ख़र्च भी बहुत हो चुका है परंतु किससे कहें? बेटों को कहने की हिम्मत नहीं वे स्वयं अपनी तंगहाली बयान करते रहते हैं. विचारों के द्वंद्व में फंसी मैं अपराधबोध से घिरने लगी हूं. क्यों दो-दो बेटियों की हत्या करवा दी? क्यों विरोध नहीं कर सकी ? अगर आज एक भी

लघुकथा

अजहर

✍ आनंद बिल्थरे

-अजहर, सुना है, आज फिर तुमने क्लास के लड़कों को गंदी गाली दी. गाली बकना, कुफ्र है बेटे.

- जानता हूं अम्मी, लेकिन अब हम यहां नहीं पढ़ेंगे. रहेंगे भी नहीं. सीधे अब्बा के पास पिंडी चले जायेंगे.

- वहां जाने से भी क्या होगा बेटे. वहां तो हम सिर्फ मुहाजिर बनकर रह जायेंगे. तेरे अब्बा का भी क्या भरोसा. कहते हैं, उन्होंने दूसरी बीवी रख ली है. सौतेली धरती और सौतेली मम्मी का दुख, इस गाली से कहीं ज़्यादा वजनी है बेटे.

- मैं क्या करूं अम्मा. सारे लड़के मुझे कटुआ गद्दार कहकर चिढ़ाते हैं.

किंतु तुम भी तो अनदेखी धरती और अनजाने लोगों की हिमायत में ज़मीन आसमान के कुलाचे, एक कर देते हो. बेटे, जिस धरती का अन्न-जल, खा पीकर हम बड़े होते हैं. उसका कर्ज, बाकी सारे कर्जों से बड़ा होता है. खुदा तो एक ही है. हां, अलग-अलग जगह उसके नाम ज़रूर बदल जाते हैं. कोई भगवान कहता है, कोई ईशु और कोई पैगंबर. नज़र मंज़िल पर हो तो रास्ते बेमानी हो जाते हैं. तुम दूसरी जमात के लड़कों के साथ प्यार-मुहब्बत से पेश आओ. उनका, उनके देवता, देवालयों की इज़्ज़त करना सीखो. फिर देखना, वे तुम पर किस कदर जान छिड़कते हैं.

- अम्मी तुम भी काफिरों की ही जुबान बोल रही हो.

- नहीं अजहर, नफ़रत का इलाज, नफ़रत नहीं, मुहब्बत है बेटे. हिंदुस्थान, जहां हमने जन्म लिया, हमारा मादरे वतन है. हम इसके लिए ही जियेंगे-इसके लिए ही मरेंगे. परायी धरती के लिए अपनी धरती की कोख को बंजर बनाना सवाब का काम नहीं है बेटे.

-अम्मा तो क्या पाकिस्तान झूठ है. उसके लिए दिखाये जा रहे सपने बेमानी हैं?

-जिन सपनों के पांव के नीचे, ज़मीन नहीं होती, वे सपने बेमानी ही होते हैं. पाकिस्तान अपनी ही नफ़रत की आग में जल रहा है. वह तुम्हें या हमें क्या सुकून देगा?

-अम्मी अगर तुम्हारा कहना सही है तो अब मैं अपनी दोनों अम्मियों के लिए जिऊंगा-मरूंगा. एक तुम्हारे लिए, दूसरे अपनी मादरे वतन के लिए. कल से एक नया अजहर जन्म लेगा अम्मी.

-आमीन!

✍ प्रेमनगर, बालाघाट (म.प्र.)-४८१००१.

बेटी होती तो क्या हमें इस तरह एकाकी, असहाय, अवसादग्रस्त स्थिति में जीने देती? बेटी के दिल में मां बाप के प्रति स्नेह, ममता व प्रेम जीवनपर्यंत रहता है. उनकी बदहाल स्थिति से वह केवल चिंतातुर ही नहीं होती बल्कि उन्हें सहारा देने के लिए आगे भी आती है. मेरी सोच भी कितनी ग़लत हो गयी थी दो बेटों की मां बनकर! महसूस होता है चार नन्हें हाथ मेरी तरफ बढ़े आ रहे हैं- 'मां, हम तुम्हें इतना प्यार दे सकते थे फिर हमें अपने से अलग कर क्यों फेंक दिया ? अब तो तुम दो-दो बेटों की मां हो फिर ख़ुश क्यों नहीं हो ? हमें मरवाकर क्या प्राप्त हुआ?' मेरी आंखों से आंसुओं का रुका बांध टूट पड़ा है.

झरझर बहते आंसुओं के बीच में अपनी अजन्मी बेटियों से माफ़ी मांगती हूं. पश्चाताप के आंसुओं के बीच मैं दृढ़ संकल्प कर रही हूं स्वस्थ होने के बाद परिचितों, रिश्तेदारों, मित्रों के साथ-साथ सभी अभिभावकों से खुला आव्हान करूंगी की बेटी की हत्या न करें, उसे जन्म लेने दें, पालें पोसे, प्यार स्नेह दें क्योंकि बेटी बड़ी अनमोल होती है.

✍ १८४, सिंधी कालोनी, जालना रोड,
औरंगाबाद- (महाराष्ट्र)४३१००५
फ़ोन : ९३२५२६१०७९

→← आमने-सामने

अंतिम क्षणों तक लेखनी मेरे हाथों में रहे !

✍ नरेंद्र कौर छाबड़ा

बहुत बार होता है कि पाठकों से लेखन केवल अपनी रचनाओं के माध्यम से ही बात नहीं करना चाहता बल्कि सीधे पाठक के सामने अपने मन की गांठ खोलना चाहता है, लेखक और पाठक के बीच की दीवार ख़त्म करने का प्रयास है यह स्तंभ, 'आमने-सामने'. अब तक मिथिलेश्वर, बलराम, (स्व.) प्रो. कृष्ण कमलेश, कृष्ण कुमार चंचल, संजीव, (स्व.) सुनील कौशिश, डॉ. बटरोही, राजेश जैन, डॉ. अब्दुल बिस्मिल्लाह, कुंदन सिंह परिहार, अवधेश श्रीवास्तव, श्रीनाथ, राम सुरेश, विजय, विकेश निझावन, नरेंद्र निर्मोही, पुन्नी सिंह, श्याम गोविंद, प्रबोध कुमार गोविल, स्वयं प्रकाश, मणिका मोहिनी, राजकुमार गौतम, डॉ. रमेश उपाध्याय, सिद्धेश, डॉ. हरिमोहन, डॉ. दामोदर खड़से, रमेश नीलकमल, चंद्रमोहन प्रधान, डॉ. अरविंद, (स्व.) सुमन सरीन, डॉ. फूलचंद मानव, मैत्रेयी पुष्पा, तेजेंद्र शर्मा, हरीश पाठक, जितेन ठाकुर, अशोक 'अंजुम', राजेंद्र आहुति, आलोक भट्टाचार्य, डॉ. रूपसिंह चंदेल, दिनेश चंद्र दुबे, डॉ. कृष्णा अग्निहोत्री, जयनंदन, सत्यप्रकाश, संतोष श्रीवास्तव, उषा भटनागर, प्रमिला वर्मा, डॉ. गिरीश चंद्र श्रीवास्तव, प्रो. मृत्युंजय उपाध्याय, सुधा अरोड़ा, पं. किरण मिश्र, डॉ. तेज सिंह, डॉ. देवेंद्र सिंह, राकेश कुमार सिंह, रमेश कपूर, डॉ. उर्मिला शिरीष, रामनाथ शिवेंद्र, अलका अग्रवाल सिगतिया, संजीव निगम, सूरज प्रकाश, रामदेव सिंह, मंगला रामचंद्रन, प्रकाश श्रीवास्तव, सलाम बिन रजाक, मदन मोहन 'उपेंद्र', भोला पंडित 'प्रणयी', महावीर रवांल्टा, गोवर्धन यादव, डॉ. विद्याभूषण, नूर मुहम्मद 'नूर', डॉ. तारिक असलम 'तस्नीम', सुरेंद्र रघुवंशी, राजेंद्र वर्मा, डॉ. सेराज खान 'बातिश', डॉ. शिव ओम 'अंबर', कृष्ण सुकुमार, सुभाष नीरव, हस्तीमल 'हस्ती' और कपिल कुमार से आपका आमना-सामना हो चुका है. इस अंक में प्रस्तुत है नरेंद्र कौर छाबड़ा की आत्मरचना.

देश के विभाजन की चर्चाएं जोरों पर थीं तथा छिटपुट हिंसा की घटनाएं आरंभ भी हो चुकी थीं. उस परिवार में चौदह वर्षीय युवा बेटी के अलावा दो छोटे बेटे व दो बेटियां भी थे. पति पत्नी ने आनेवाले भयावह समय के मद्देनज़र पाकिस्तान से निकलने का निर्णय ले लिया. धनधान्य से भरेपूरे घर, माल असबाब को छोड़ ज़रूरी सामान व बच्चों के साथ वे बिहार के कोरडरमा शहर में आ गये. दो साल गुज़रने के बाद भी कोई व्यवस्थित गृहस्थी के लायक कामधंधा न बन पाया तो झूमरी तलैया की ओर रुख किया. यहां भी तीन वर्ष रहकर कुछ काम जम न पाया. यहीं उनके घर एक और बेटी ने जन्म लिया. (आज भी अपना जन्म स्थान झूमरी तलैया बताती हूं तो कई लोग हैरानी से पूछते हैं क्या वास्तव में यह स्थान अस्तित्व में है? क्योंकि रेडियो सीलोन के फ़र्माइशी कार्यक्रमों में सबसे अधिक फ़रमाइश झूमरी तलैया से ही आती थी. इसके अलावा तो कभी समाचार या अख़बारों पत्रिकाओं में कभी इसका जिक्र नहीं आता. तब उन्हें बताना पड़ता है कि आज यह तहसील झारखंड के अतर्गत आती है. जिस तरह आंध्रप्रदेश में हैदराबाद, सिकंदराबाद शहर है बीच में बड़ी झील है उसी तरह झूमरी तथा तलैया भी ताल से अलग-अलग है. मेरा जन्म तलैया में हुआ था.) कुछ समय बाद पूरा परिवार रांची चला गया. यहां पिताजी व बड़े भाई ने होटल खोला. तीन चार वर्ष संघर्ष करके भी कुछ ख़ास हासिल नहीं हुआ. तभी इंदौर में बस चुके नानाजी ने वहां बुला भेजा. पिताजी तैयार हो गये और फिर इंदौर में ही स्थायी रूप से रहने का निर्णय ले लिया.

इंदौर में आठ बच्चों के साथ माता पिता ने तीन कमरों के किराये के घर में आश्रय लिया. तब वहां बिजली भी नहीं थी. साल भर लालटेन की रोशनी में ही सारे कार्य होते थे. तब मैं छह वर्ष की हो चुकी थी. हम चारों बहनों को सरकारी स्कूल शारदा कन्या विद्यालय में दाख़िला दिलाया गया. स्कूल घर से लगभग डेढ़ किलोमीटर दूर था. दो बड़ी बहनें दोपहर की शिफ़्ट में थीं वे भी पैदल जाती थीं तथा मैं व छोटी बहन अपने से एक दो साल बड़ी सहेलियों के साथ पैदल स्कूल जाती थीं. बेहद किफ़ायती व साधारण जीवन शैली के चलते मैं नवीं कक्षा में पहुंच गयी. पिताजी काफ़ी धार्मिक प्रवृत्ति के थे लेकिन साथ ही गुस्सैल व सख़्त स्वभाव के थे. कदाचित इसके पीछे कम आमदनी में बड़े परिवार के भरण पोषण के साथ-साथ हम भाई बहनों की पढ़ाई के ख़र्चे भी रहे हों! उस ज़माने में लड़कियों पर प्रतिबंध, रोकटोक भी काफ़ी होती थी. हम भी उसके शिकार हुए. केवल लड़कियों के स्कूल-कॉलेज में पढ़ाई हुई, सहेलियों के साथ ही बातें करना,

खेलना घूमना वह भी सीमा के भीतर. लड़कों से तो बात करते भी घबराहट होती थी. नतीज़ा यह कि मैं दब्बू व डरपोक अंतर्मुखी स्वभाव की होती गयी.

पिताजी को धार्मिक ज्ञान बहुत था. वे धार्मिक पुस्तकें पढ़ते रहते. लेख व कविताएं भी लिखते तथा पंजाबी अ़ख़बारों में, पत्रिकाओं में भेजते. उनकी रचनाएं छपतीं, हम पढ़ते लेकिन धार्मिक होने के कारण उन्हें पूरी तरह समझ न पाते. पिताजी से इस बारे में बात करने या कुछ पूछने की हिम्मत नहीं होती थी.

उन दिनों इंदौर का सर्वाधिक प्रतिष्ठित व लोकप्रिय अ़ख़बार 'नई दुनिया' हुआ करता था जो हमारे घर आता था. उसमें साप्ताहिक पृष्ठ 'बच्चों की दुनिया' मैं बड़े चाव से पढ़ती थी. इसमें कविताएं, चुटकुले, बाल-कहानी व पहेलियां प्रकाशित होती थीं. एक दिन उस पृष्ठ के संपादक द्वारा बच्चों को 'बरखा' विषय पर चार-छह लाइनों में कविता लिखकर भेजने का आग्रह किया गया. सबसे अच्छी पांच कविताओं को अ़ख़बार में प्रकाशित करना था. यह सूचना पढ़कर मेरे अंदर भी कुछ लिखने की उमंग जाग उठी. कविता लिखी और बड़े भाई बहनों को दिखाई. वहां से कोई विशेष प्रोत्साहन न पाकर मैंने चुपचाप उसे पोस्ट कर दिया. अगले रविवार का बेसब्री से इंतज़ार करने लगी. सबेरे अ़ख़बार आते ही पहले बच्चों की दुनिया का पृष्ठ खोला तो देखा पांच चुनी हुई कविताओं में मेरी रचना भी नाम के साथ प्रकाशित हुई थी. उस नन्हीं सी रचना के प्रकाशन से मैं इतनी प्रसन्नता, उत्साह व उमंग से भर उठी कि अब हर सप्ताह- पंद्रह दिनों में कभी कोई चुटकुला कभी छोटी सी कविता या कभी अनमोल वचनों का संग्रह भेज देती. अंदर लेखन की क्षमता का अहसास होने लगा. घर के सदस्य भी प्रोत्साहन देने लगे.

'गर्मी की छुट्टियां आप कैसे बितायेंगे?' विषय पर उसी पेज पर प्रतियोगिता का आयोजन किया गया. मैंने भी उसमें अपने विचार लिख भेजे. जब नतीज़ा घोषित हुआ तो पुरस्कृत बच्चों में मेरा नाम भी था. पुरस्कार लेने के लिए प्रेस कांप्लेक्स में बुलाया गया. बड़े भाई (जो बचपन से लेकर आज तक भी मेरी गतिविधियों की जानकारी लेते रहे हैं व प्रोत्साहित करते रहते हैं) के साथ मैं प्रेस कांप्लेक्स पहुंची. विजेताओं को पुरस्कार दिये गये लेकिन संपादकजी ने बड़े प्यार से एक बड़ी बात कही. पुरस्कार स्वरूप पेन (कलम) देते हुए उन्होंने कहा आपके हाथ में लेखनी दी है. इससे इतना अच्छा सृजन करना कि अपनी अलग पहचान बनाना. कितने ही समय तक मैं उस लेखनी द्वारा ही रचनाएं लिखती रही. वह लेखनी मेरे जीवन का पहला पुरस्कार थी....

एक दिन किसी सहेली के घर 'नवभारत टाइम्स' (बंबई) का अंक देखा. उसमें बच्चों के लिए लेखन प्रतियोगिता, चित्र प्रतियोगिता, कविताएं, पहेलियां देखीं तो तुरंत अगले दिन अ़ख़बार वाले से कहा हर रविवार को नवभारत टाइम्स का अंक भी डाले. उसमें बच्चों को किसी विषय पर अपने विचार भेजने होते थे तथा तीन को पुरस्कृत किया जाता था. मैं हर विषय पर अपने विचार भेजने लगी और कुछ ही दिनों बाद ऐसा वक़्त आया जब मेरे प्रत्येक लेख को पुरस्कृत किया जाता था. लगभग एक वर्ष यह सिलसिला चला.

स्कूल की पढ़ाई ग्यारहवीं कक्षा तक थी. मैंने विज्ञान विषय लिया था. बड़ी बहन मेडिकल में थी. अतः मैं भी डॉक्टर बनने की इच्छा मन में पाले हुए थी. कॉलेज में भी विज्ञान विषय लिया और जोरों से पढ़ाई शुरू की. लेकिन कुछ ही समय में मुझे महसूस हुआ कि हर समय पढ़ाई करना मेरे बस की बात नहीं थी. बड़ी बहन मोटी-मोटी किताबों में सिर गड़ाये रखती थी उसे और किसी कार्य के लिए वक़्त ही नहीं मिलता था जबकि मुझे अन्य गतिविधियों में भी रुचि होने लगी थी. हायर सेकंडरी में विज्ञान की छात्रा होने के कारण ड्राईंग तो अच्छी थी ही, मैंने पेंटिंग का सामान लाकर वह भी बनाने की कोशिश शुरू कर दी. जहां कहीं सुंदर दृश्य, ग्रीटिंग कार्ड नज़र आता उन्हें सामने रख बनाने की कोशिश करती. यही सारी बातें ध्यान में रख मैंने मेडिकल जाने का विचार त्याग दिया और विज्ञान में स्नातक, फिर उच्च स्नातक करने का मन बना लिया. उन्हीं दिनों एक पेंटिंग बनायी और 'नंदन' में भेज दी. 'पराग' व 'नंदन' उन दिनों हम सभी भाई बहन पढ़ते थे. सितंबर ६६ की 'नंदन' में मेरी पेंटिंग छप गयी तो मैं और भी लगन से चित्र बनाने लगी. साथ ही लेखन का छिटपुट कार्य जारी रहा.

मई १९६९ की गर्मी की छुट्टियां थीं. बी.एस.सी. द्वितीय वर्ष की परीक्षाएं हो चुकी थीं. मैं अपनी सहेली

की बहन की शादी में देने के लिए पेंटिंग बना रही थी. उन्हीं दिनों औरंगाबाद (महाराष्ट्र) से माताजी के मौसेरे भाई हमारे घर आये. वे दो दिन हमारे घर रहे तथा मुझसे मेरे शौक, गतिविधियों की जानकारी लेते रहे. तीसरे दिन एक और सज्जन (जो मेरे होनेवाले ससुरजी थे) आये. तब मेरी डॉक्टर बहन ने मुझे बताया कि पिताजी ने औरंगाबाद में एक इंजीनियर लड़के को मेरे लिए पसंद कर लिया है अब उसके पिताजी मुझे देखने आये हैं. मैं तो बुरी तरह घबरा ही गयी बोली- 'मैं अभी इतनी छोटी हूं मेरी पढ़ाई भी पूरी नहीं हुई आप मुझसे इतनी बड़ी हो पहले तो आपकी शादी होनी चाहिए न!' अब माताजी बोलीं कि उसके लिए तो डॉक्टर लड़का ढूंढ़ना पड़ेगा. देर भी लग सकती है लेकिन तुम्हारे लिए अच्छा घर वर मिल रहे हैं इसलिए बात चलायी है. पढ़ाई का क्या है वह तो शादी के बाद भी कर सकती हो. फिर अभी पांच बच्चों की शादियां करनी हैं. इतना कहकर उन्होंने मुझे फोटो दिखाई और पूछा कैसा है? मेरी तो हालत ही दयनीय हो गयी थी कोई जबाब नहीं सूझ रहा था क्योंकि शादी के बारे में न तो कभी सोचा था और न ही इस बारे में कोई जानकारी ही थी. मैंने सिर्फ़ इतना कहा मुझे कुछ पता नहीं आपको जो ठीक लगता है कर लीजिए.

मेहमानों के सामने चाय नाश्ता रखने की रस्म मुझसे करवायी गयी. उन्होंने मुझसे मेरा नाम, शिक्षा के बारे में, शौक रुचियों के बारे में पूछा. कुछ देर आपस में सलाह मशविरा किया और अपनी स्वीकृति दे दी. आनन-फानन में करीबी रिश्तेदारों को बुलाया गया और सगाई की रस्म अदा हो गयी. ससुरजी एक साड़ी व घड़ी भेंट स्वरूप दे गये. न पति को देखा, न कोई बात, न कोई पत्र व्यवहार. चार महीनों के बाद हमारी शादी हुई. शादी के बाद छह महीने मायके रहकर अंतिम वर्ष की पढ़ाई पूरी कर स्नातक की उपाधि प्राप्त की.

मायके में जहां मेरी गिनती छोटों में होती थी वहीं ससुराल में सबसे बड़ी बहू के रूप में ज़िम्मेदारियों से घिर गयी. आठ भाई बहन व माता पिता कुल दस सदस्यों के परिवार में मैं दो देवरों व एक ननद से उम्र में छोटी होने के बावजूद घर की बड़ी बहू थी. केवल अठारह वर्ष की उम्र पूरी हुई थी. इस परिवार में मेरे मायके की तुलना में कुछ खुलापन था. जल्दी ही मैं परिवार में हिलमिल गयी. ससुरजी सामाजिक कार्यकर्ता थे. समाज में उनकी इज़्ज़त थी. आये दिन कभी लंच, कभी डिनर पर उनके मेहमान आते रहते और हम सभी मिल-जुलकर भोजन तैयार करते. डेढ़ वर्ष बीतने के बाद में एक प्यारी सी बेटी की मां बन गयी. घर में सभी प्रसन्न थे. बेटी ग्यारह दिन की हुई तो सासजी को हल्का दिल का दौरा पड़ गया. उन्हें अस्पताल में भर्ती कर दिया गया. सारा घर अव्यवस्थित हो गया और मुझे रसोई संभालनी पड़ी. नतीज़ा यह हुआ कि जबरदस्त कमर दर्द की शिकायत शुरू हो गयी जो बहुत लंबे अर्से तक चली. इसके लिए चिकित्सा क्षेत्र की तमाम थैरेपी अपनायीं, बहुत इलाज करवाये.

दो वर्ष बाद बेटा भी आ गया. मैं पूरी तरह से घरेलू महिला बनकर रह गयी थी. घर परिवार बच्चे और बस! इन पांच वर्षों में मेरे भीतर की लेखन क्षमता न जाने कहां गुम हो चुकी थी. एक दिन पति बोले तुम शादी से पहले कुछ लिखा करती थीं. अब क्यों नहीं लिखतीं? वे बोले- कोशिश तो करके देखो. पति यहां के विश्वविद्यालय में निवासी अभियंता थे. लायब्रेरी से वे अक्सर अंग्रेजी पत्रिकाएं लाया करते थे जिसे ससुरजी व पति, देवर पढ़ा करते थे. मैंने जब हिंदी की पत्रिकाएं लाने के लिए कहा तो अगले दिन ही ये 'धर्मयुग', 'साप्ताहिक हिंदुस्तान' ले आये. इतनी स्तरीय पत्रिकाएं पढ़ने का मौका पहली बार मिला था. फिर तो पढ़ने का सिलसिला चल पड़ा . 'सारिका', 'कादंबिनी', 'सरिता', 'नवनीत' भी कभी-कभी मिल जातीं. उन्हीं दिनों

किसान

✍ **गाफिल स्वामी**

भूखा प्यासा रात दिन, मेहनत करे किसान ।
सबका दाता है दुःखी, कैसा विधी विधान ।।
कैसा विधी विधान, खेत में अन्न उगाये ।
प्रकृति मार को सहे, नहीं फिर भी घबड़ाये ।।
'गाफिल स्वामी' कहें - खाय वो रूखा सूखा ।
सबको अन्न खिलाय, कभी रह जाता भूखा ।।

लालपुर, पोस्ट-इगलास, अलीगढ़ (उ.प्र.)-२०२१२४

महिलाओं संबंधी एक लेख लिखा जिसे सरिता में भेज दिया. १९७५ में यह लेख प्रकाशित हुआ तो मेरी ख़ुशी का ठिकाना नहीं था. सारे परिवार को अपनी ओर से फ़िल्म दिखाई. नवभारत टाइम्स के रविवारीय पृष्ठ पर महिला-जगत स्तंभ में हर दो माह में किसी विषय पर विचार आमंत्रित किये जाते थे. मैं उसमें नियमित अपने विचार भेजने लगी और लगभग सभी पुरस्कृत होकर छपते थे. तीन चार साल यह सिलसिला चला. बीच बीच में कुछ समय निकालकर प्राकृतिक दृश्यों की पेंटिंग भी बना लेती थी. मायके में केवल एक भाई का प्रोत्साहन मिलता था और यहां केवल अपने पति का. बाकी सदस्यों को कला के प्रति कोई दिलचस्पी नहीं थी. मां की सीख थी कि ससुराल में सास ससुर जो भी कहें चुपचाप सुनना है जवाब नहीं देना. एक तो पहले ही संकोची व दब्बू किस्म की थी अतः तेज़ स्वभाव की सास की झिड़कें, रौब व बड़ी ननद व देवर की व्यर्थ की धौंसबाजी को चुपचाप सहन कर लेती थी. पति से जिक्र भी न करती. फिर आम संयुक्त परिवारों की तरह छोटी-छोटी बातों पर कलह, मनमुटाव, शिकायतें होने लगीं. एक बार काफ़ी कहासुनी हुई तो हम अपने तीन बच्चों के साथ दो कमरों के मकान में शिफ़्ट हो गये. बाद में बैंक व हाऊसिंग सोसायटी से ऋण लेकर हमने अपना घर बनाया.

परिवार से इस तरह उपेक्षित व लगभग धकिया दिये जाने के बाद मन क्षुब्ध हो गया था. तब मैंने सरिता के लिए लेख लिखा 'फर्ज निभाकर जिक्र भी करें.' अपने साथ हुए धोखे पर यह लेख आधारित था. सन ८४ तक इसी तरह छिटपुट लेखन करती रही. सरिता में काफ़ी लेख छप गये तो मनोरमा, गृहशोभा में भी लेख भेजे तथा वे प्रकाशित भी हुए. एक दिन पति बोले- तुम्हारे लेख तो काफ़ी छप गये अब कहानी लिखने की ओर बढ़ो. मैंने कहा मुझे कहानी लिखनी कहां आयेगी? अब तक छोटे लेख, स्तंभों के लिए अनुभव आदि ही लिखती आ रही हूं. कहानी लिखना तो बहुत कठिन है. वे हमेशा की तरह बोले- कोशिश तो करके देखो. और मैंने कोशिश शुरू कर दी. दो चार कहानियां लिखीं. सरिता, नवभारत टाइम्स से वे सखेद वापस आ गयीं. मैं निराश हो गयी, यह मेरे बस की बात नहीं. लेकिन मन भी नहीं मानता था. मैं फिर सोचती काश मेरी भी कहानी छप जाये मैं अगली बार और अच्छा लिखूंगी.

१९८४ में पति ने विश्वविद्यालय की नौकरी छोड़ दी. वहां की राजनीति व अव्यवस्था उनसे सहन नहीं हो रही थी. मात्र पंद्रह सौ की मासिक आय पर वे दूसरी जगह नौकरी करने लगे. वह वक़्त हमारे लिए काफ़ी कठिनाइयों भरा था. तीनों बच्चे स्कूल सिटी बस से जाते थे क्योंकि ऑटो महंगा पड़ता था, मैं घर के सारे कार्य स्वयं करती... कपड़े सीना, स्वेटर बुनना, अचार-पापड़, सॉस जैम, चिप्स, बिस्कुट, खटाई, नाश्ते के लिए मठरी, चिवड़ा, शक्करपारे और भी न जाने क्या क्या. सिटी बस से ही बाज़ार जाती. सप्ताह भर की सब्जियों, फल से भरी थैलियां कंधे पर लटकाये, बस से ही वापस आती. शाम को तीनों बच्चों को पढ़ाना, होमवर्क कराना भी मेरी ड्यूटी थी. गणित व मराठी पति करवा देते.

इस बीच एक कहानी लिखकर सरिता में भेजी. वह दिन मेरे लिए बेहद ख़ुशी भरा था जिस दिन कहानी का स्वीकृति पत्र प्राप्त हुआ. सन ८६ में पहली कहानी 'प्रायश्चित' किसी पत्रिका में प्रकाशित होनेवाली पहली कहानी थी. इसके प्रकाशन के बाद मुझमें कहानी लिखने का रुझान बढ़ने लगा. अगले दो वर्षों में और दो तीन कहानियां सरिता में तथा नवभारत टाइम्स में छपीं. अपने शहर में उभरती हुई लेखिका के रूप में मेरी पहचान बनने लगी थी. आकाशवाणी पर भी लेख, परिचर्चा, दिन विशेष के लिए फीचर आदि लिखने व सुनाने के कार्यक्रमों में बुलाया जाने लगा. यहां के दैनिक मराठी अख़बार 'लोकमत' में रचनाओं का मराठी रूपांतर प्रकाशित होने लगा. इस बीच किसी पत्रिका में अंबाला के कहानी लेखन महाविद्यालय का विज्ञापन देखा. अपने लेखन को परिमार्जित करने व प्रभावी बनाने के विचार से मैंने कहानी लेखन का कोर्स जो छह माह का था पत्राचार के माध्यम से किया. वहां के निदेशक महाराज कृष्ण जी ने काफ़ी सारी जानकारी तो दी ही मार्गदर्शन भी बहुत अच्छा किया. कुछ कहानियों में सुधार का सुझाव भी दिया. उनके कोर्स से मुझे अच्छा लाभ मिला.

सन ८४ में तात्कालीन प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी

की हत्या के बाद देश में जो सिख विरोधी दंगे हुए उनमें मेरे भाइयों का काफ़ी नुकसान हुआ. बड़े भाई तो उस वक़्त परिवार सहित अमृतसर दर्शन के लिए गये हुए थे. पीछे से उनका पूरा सामान लूटकर घर को आग लगा दी गयी थी. दूसरे भाई की लकड़ी की बड़ी दुकान थी. दंगाई वहां भी आग लगाने पहुंचे तो आस-पास के लोगों ने उन्हें पैसे देकर किसी तरह वहां से हटाया क्योंकि एक दुकान को आग लगने से पूरी मंडी के स्वाहा हो जाने का डर था. सभी दुकानें आपस में सटी हुई थीं. तीसरे भाई ने उन तीन चार दिनों तक पड़ोसियों के घरों में छिप-छिप कर वह बुरा मनहूस वक़्त काटा था. दंगों के बाद सभी इतने आहत व भयभीत हुए कि चार पांच माह में अपना माल असबाब बेचकर पंजाब में बस गये. दंगों के वक़्त व बाद के अनुभवों को लेकर मैंने ९० में 'वापसी' कहानी लिखी और धर्मयुग में भेज दी. महीने भर बाद जब उस कहानी की स्वीकृति का पत्र मिला तो मैं ख़ुशी से झूम उठी. इतनी स्तरीय बल्कि उस वक़्त की सर्वश्रेष्ठ पत्रिका के लिए मेरी कहानी स्वीकृत होना एक बड़ी उपलब्धि थी. जनवरी ९१ के धर्मयुग में यह कहानी प्रकाशित हुई. पाठकों ने इसे काफ़ी पसंद किया था. इसके बाद दुगुने उत्साह से कहानियां लिखने में जुट गयी. इधर पति को भी केंद्र सरकार द्वारा चार्टर्ड इंजीनियर तथा प्रापर्टी वैलुअर का प्रमाणपत्र मिल गया और उनका काम अच्छा चलने लगा.

स्थानीय लायन्स क्लब द्वारा हर वर्ष महिलाओं के लिए विभिन्न स्पर्धाओं का आयोजन किया जाता था. मैं वहां भी कई बार गयी तथा रंगोली, पुष्पसज्जा, केक आइसिंग, बुनाई-कढ़ाई, सलाद सज्जा आदि में अनेकों बार पुरस्कार प्राप्त किये. बहुत उत्साह रहता था हर तरह के कार्य करने में, स्पर्धाओं में हिस्सा लेने में पति ने सदा सहयोग दिया, प्रोत्साहित किया. इस बीच बेटी विज्ञान स्नातक करके डी.एम.एल.टी. कर रही थी. बड़ा बेटा इंजीनियरिंग कर रहा था और छोटा भी हाईस्कूल में आ गया था. ९२ में मुझे विश्वविद्यालय से पत्र प्राप्त हुआ कि बी.ए. पाठ्यक्रम समिति (हिंदी) की सदस्य के रूप में मुझे मनोनीत किया गया है. यह मेरे लिए बड़े गर्व की बात थी कि विज्ञान स्नातक होने के बावजूद मुझे इस समिति में लिया गया था. समिति के वरिष्ठ सदस्यों ने बताया कि हिंदी प्रेम, हिंदी में सृजन के लिए मेरा चयन किया गया. कुछ माह बाद ही आकाशवाणी की प्रोग्राम समिति के सदस्य के रूप में मेरा चयन हुआ. इन उपलब्धियों ने नये सिरे से उत्साह बढ़ाया. लेखन व पेंटिंग साथ-साथ चलते रहे. अब रचनाएं छपने का दायरा भी बढ़ने लगा. कहानियों के साथ-साथ लघुकथाएं लिखनी भी आरंभ कर दीं. दो लघुकथाएं सारिका के लिए स्वीकृत हुई थीं लेकिन उनके प्रकाशन से पहले सारिका का प्रकाशन ही बंद हो गया.

अगस्त ९२ में लोकमत समाचार हिंदी दैनिक औरंगाबाद से प्रकाशित होने की ख़बर मराठी अख़बार में छपी. साथ ही एक विज्ञापन जिसमें उपसंपादक पद के लिए आवेदन पत्र मंगाये गये थे. मराठी के वरिष्ठ समाचार संपादक ने मुझे इसके लिए आवेदन करने के लिए कहा. मैंने कहा- मेरा तो इस क्षेत्र मे कोई अनुभव नहीं है और न अब तक मैंने कहीं नौकरी की है. इस पर वह बोले अनुभव तो काम करते-करते आ ही जाता है. इस अख़बार में फ़ीचर पद के लिए आप योग्य उम्मीदवार हैं आवेदन ज़रूर करें. घर पर सलाह मशविरा हुआ और सभी ने सहमति दे दी. आवेदन पत्र लिककर भेज दिया.

तीन-चार दिन बाद साक्षात्कार के लिए संपादकजी राजेंद्र दर्डा ने अपने घर बुलाया जहां उनकी पत्नी आशु दर्डा भी साथ थीं. परिचित तो थे ही उन्होंने सारी फ़ाइलें, एलबम देखे तथा उन्हें रखते हुए पूछा- आप कब जॉइन कर रही हो? और इस तरह अख़बार की उपसंपादक का पद मिल गया. फ़ीचर पेज की ज़िम्मेदारी मुझे सौंपी गयी. महीना भर ट्रेनिंग दी गयी. १२ सदस्यों की टीम में केवल मैं स्थानीय तथा महिला थी शेष सभी उत्तर प्रदेश, बिहार, मध्यप्रदेश, हिमाचल प्रदेश जैसे हिंदी प्रदेशों से आये थे. मैं बड़े मनोयोग से कार्य में जुट गयी. प्रिंट मीडिया की नयी-नयी जानकारी मिल रही थी, बड़ा आनंद आता था. मेरा तैयार किया फ़ीचर पेज अख़बार को लोकप्रिय बनाने में अच्छी भूमिका निभा रहा था. कितनी ही स्थानीय महिलाओं को लेखन के लिए प्रेरित किया, नये-नये विषय देकर इस बीच स्थानीय संपादक चंदर शर्मा ने मुझे भी अपने

पृष्ठ के लिए कुछ लिखने के लिए कहा. मैंने महिलाओं से संबंधित देश की ज्वलंत घटनाओं का आधार लेकर कुछ लेख लिखे तो उन्होंने मुझे साप्ताहिक स्तंभ 'बातचीत' लिखने के लिए कहा. यह मेरे लिए चुनौती के साथ-साथ उपलब्धि भी थी. यह स्तंभ पांच वर्षों तक चला जिसे काफ़ी पसंद किया गया विशेषकर महिलाओं द्वारा.

पत्रकारिता के क्षेत्र से जुड़ने पर समाज में अच्छी पहचान होने लगी थी. मेरे भीतर का संकोच, डर व दब्बूपन भी ख़त्म होने लगा था. मुखरता आने लगी थी.

अपने स्तंभ में मैंने ध्वनि प्रदूषण से होनेवाले नुकसानों का ब्यौरा देते हुए लिखा कि सभी धार्मिक स्थानों पर तेज़ आवाज़ों से जो धार्मिक आयोजन होते हैं वे भी इसी श्रेणी में आते हैं. उनके लाउडस्पीकरों की आवाज़ कम की जानी चाहिए. बस, दो चार खुराफाती युवकों ने इसे मुद्दा बनाकर दुष्प्रचार करना शुरू किया. उनके अनुसार हम नास्तिक थे. धर्म प्रचार से हमें तकलीफ होती थी. अख़बार से लेख काटकर उसे धार्मिक स्थल पर चिपका दिया तथा लोगों से कहा इन्हें समाज से बहिष्कृत कर दिया जाय. बात बढ़ती देख कुछ बुजुर्गों ने हस्तक्षेप किया व उन युवकों को फटकारा. उनकी ओछी हरकत के लिए हम लोग तनाव न लें, ऐसी तसल्ली दी तब जाकर मामला ठंडा हुआ लेकिन उस एक महीने के समय को हमने बेहद मानसिक तनाव से गुज़रते हुए बिताया.

प्रेस में सभी प्रदेशों के हिंदी अख़बार आते थे. मैंने उनमें भी अपनी रचनाएं भेजनी शुरू कर दीं. बंबई के जनसत्ता में मेरे काफ़ी लेख छपे. रविवारीय 'सबरंग' के संपादक धीरेंद्र अस्थाना जी ने मेरी अनेक लघुकथाओं को प्रकाशित किया. उसमें प्रकाशित कहानी 'और ज्वालामुखी फट पड़ा', पाठकों द्वारा सराही गयी थी. 'कथाबिंब' के संपादक अरविंद जी ने पत्र-व्यवहार में इस कहानी का जिक्र करते हुए लिखा था कि इसी से वे मुझे जानने लगे थे. पंजाब केसरी, दैनिक ट्रिब्यून, राजस्थान पत्रिका, दैनिक हिंदुस्तान, नयी दुनिया आदि में मेरे लेख, कहानियां स्थान पाने लगे थे. ९४ तक पंद्रह-बीस कहानियां छप चुकी थीं अतः कहानी संग्रह छपवाने का विचार आया. विश्वविद्यालय से अनुदान मिल गया और ९४ दिसंबर में पहला कहानी संग्रह 'मेरी प्रतिनिधि कहानियां' प्रकाशित हुआ. अगले वर्ष इसे हिंदीतर भाषा पुरस्कार घोषित किया गया तथा ९६ मार्च में राष्ट्रपति शंकर दयाल शर्मा के हाथों पुरस्कृत किया गया. यह मेरे जीवन की बहुत बड़ी उपलब्धि थी. इसके पश्चात लघुकथाएं हंस, कथादेश, कथाबिंब, नई दुनिया, नवभारत, ट्रिब्यून तथा कुछ अन्य पत्र पत्रिकाओं में प्रकाशित हुईं. धर्मयुग में कुछ लेख भी छपे. विपाशा, सहारा समय व आउटलुक में भी रचनाओं को स्थान मिला.

पंजाब केसरी में जब पहली कहानी छपी तो प्रशंसकों के लगभग ५० पत्र मिले. इसके पश्चात तो सिलसिला चलता रहा. कुछ पाठक तो इतने अजीबोग़रीब पत्र लिखते थे कि हंसी के साथ-साथ. कोफ़्त भी होती थी. तीन चार प्रशंसकों ने तो अपना बायोडाटा व फ़ोटो भेज दिया व मुझसे भी भेजने का आग्रह किया. पति व बच्चे मजे लेते थे. ऐसे पत्रों को विषय बनाकर कहानी 'सरप्राइज' लिखी जो 'मेरी सहेली' में छपी. मेरी अधिकांश कहानियां अपने आसपास घट रही घटनाओं के कथानकों को लेकर लिखी गयी हैं. इस बीच औरंगाबाद पधारी बड़ी हस्तियों के साक्षात्कार लिये जो लोकमत समाचार नागपुर, औरंगाबाद तथा गृहशोभा में भी छपे. इनमें से प्रमुख थे शोभा डे, श्रीराम लागू, दलेर मेहंदी, गुरदास मान, डॉ. जोगिंदर पाल, डॉ. मृदुला गर्ग, डॉ. सूर्यबाला आदि.

जब मेरी पेंटिंग्स के पंद्रह-बीस फ्रेम तैयार हो गये तो स्थानीय सृष्टि आर्ट गैलरी में,१९९६, में एकल प्रदर्शनी का आयोजन किया गया. शौकिया कलाकार की दृष्टि के मद्देनजर लोगों ने इसे काफ़ी सराहा. इसमें अधिकांश प्राकृतिक दृश्य ही थे. अख़बारों में भी अच्छा कवरेज मिला. अब स्कूल, कॉलेज, संस्थाओं, समारोहों में मुझे प्रमुख अतिथि, निर्णायक के रूप में बुलाया जाने लगा. विशेषकर हिंदी दिवस, महिला दिवस, बाल दिवस जैसे कार्यक्रमों में. इस बीच मैंने अपनी कहानियों का पंजाबी अनुवाद करना भी शुरू किया. लगभग तेरह-चौदह कहानियों का अनुवाद किया और वे सभी पंजाबी की प्रतिष्ठित पत्रिकाओं में छपीं. 'बीसवीं सदी का नारी रचित पंजाबी साहित्य ग्रंथ २००२' में दिल्ली साहित्य अकादमी द्वारा प्रकाशित किया गया जिसमें पंजाबी की दिग्गज लेखिकाओं की कहानियों के साथ

लघुकथा

महिला उत्थान

✍ अनंत भटनागर

''महिलाओं की उन्नति के बिना हमारे देश की प्रगति अधूरी है. इसलिए यदि हमें देश को आगे बढ़ाना है तो महिलाओं को आगे लाना होगा. हमारी हर संभव कोशिश होगी कि महिलाओं को बेहतर शिक्षा व स्वास्थ्य ही नहीं बल्कि उन्नति करने के समान अवसर भी मिलें.'' मंत्रीजी के इन धारा प्रवाह शब्दों को सुनकर कन्या महाविद्यालय का सभागार तालियों की गड़गड़ाहट से गूंज उठा.

छात्राओं के उत्साह से प्रभावित होकर मंत्री जी ने फिर भाषण आगे बढ़ाया- ''आज हम आज़ाद हैं. पुरुषों के समान महिलाएं भी आज़ाद हैं. लेकिन आज की महिला के लिए केवल इतनी ही आज़ादी पर्याप्त नहीं है. उन्हें अब पूर्ण आज़ादी चाहिए यानी निर्णय लेने की संपूर्ण स्वतंत्रता.''

''क्या आप अपने परिवार की महिलाओं को निर्णय लेने की स्वतंत्रता देने को तैयार हैं?' यकायक सभागार की पिछली पंक्ति में बैठी एक दुबली-पतली सी छात्रा का दृढ़ स्वर गूंज उठा. छात्रा की हिम्मत देखकर पहले तो प्राचार्या के मुख पर मुस्कान आयी तभी उन्हें गलती का अहसास हुआ. उन्होंने हाथ के इशारे से छात्रा को बैठने का संकेत किया. प्राचार्या की प्रतिक्रिया को देखकर प्राध्यापिकाएं भी आंखों से घूर कर छात्रा को बैठ जाने का निर्देश देने लगीं.

छात्रा की क्रिया व अध्यापिकाओं की प्रतिक्रिया को मंत्रीजी ने तुरंत भांप लिया. माईक को तुरंत संभालकर वे कहने लगे- ''प्राचार्या जी, छात्रा को प्रश्न पूछने से मत रोकिए. बच्चियां प्रश्न करना नहीं सीखेंगी तो वे समाधान कैसे खोजेंगी?'' छात्रा की ओर दृष्टि घुमाकर मंत्रीजी ने पुनः बोलना प्रारंभ किया- ''बिटिया, मैं तो मातृशक्ति की उपासना में विश्वास रखता हूं. मेरे पूजा गृह में लक्ष्मी, सरस्वती, दुर्गा की मूर्तियां हैं, जिनकी अर्चना किये बिना मैं घर से बाहर नहीं निकलता हूं. बचपन में मां की आज्ञा का पालन करता था और विवाह के बाद से पत्नी की इच्छा का गुलाम रहा. मां और पत्नी तो अब दुनिया में रहे नहीं, एक बेटी थी जिसका पिछले साल विवाह कर दिया है.''

''हां, मुझे मालूम है. जिस बेटी का आपने विवाह किया है वह किसी और लड़के से प्यार करती थी. उसके प्रेमी की लाश झील में मिली थी. आपकी पत्नी ने आत्महत्या की थी और आपकी माताजी घर त्याग कर सन्यासिन हो गयी थीं. और सुनेंगे आप, कल रात को आपका लड़का नाईट क्लब में लड़कियां छेड़ते पकड़ा गया था, जिसे आज आप छुड़वाकर लाये हैं.''

छात्रा का दुस्साहसपूर्ण स्वर तीव्र होता जा रहा था. सभी लड़कियों के चेहरे मंच की बजाय उसकी ओर थे और वे उसका उत्साह बढ़ा रही थीं.

प्राचार्या ने मंत्रीजी को अति-व्यस्त बतलाकर कार्यक्रम समाप्ति की घोषणा कर दी.

✉ ६६, कैलाशपुरी, किश्र्यनगंज, अजमेर-३०५००१

मेरी कहानी को भी सम्मिलित किया गया. पिछले वर्ष 'पंजाबी' महिला कलाकारों की श्रेष्ठ कहानियां' संग्रह दिल्ली के डॉ. चरणजीत सिंह के संपादन में प्रकाशित हुआ जिसमें मेरी कहानी 'कर्फ्यू' को शामिल किया गया. यह कहानी 'कथाबिंब' में २००१ में प्रकाशित हुई थी तथा उसे 'कथाबिंब पुरस्कार' (द्वितीय) प्राप्त हुआ था.

१९९९ में प्रेस की नीतियों में परिवर्तन किये गये जिसके तहत यहां से फ़ीचर पृष्ठ बंद कर दिया गया. सप्ताह में तीन परिशिष्ट नागपुर हेड ऑफिस से बनकर यहां आने लगे. मुझे समाचार पृष्ठ पर काम करने के लिए कहा गया. यह कार्य मुझे बहुत उबाऊ लगने लगा क्योंकि मैं तो साहित्य क्षेत्र से जुड़ी थी. छः महीनों बाद ही मैंने त्यागपत्र दे दिया और स्वतंत्र पत्रकार

के तौर पर अपना लेखन जारी रखा. अब तक बेटी व बड़े बेटे की शादी हो चुकी थी व छोटा भी मुंबई में जे.बी.एम. में कोर्स कर रहा था. घर में केवल हम दो प्राणी थे. काफी वक़्त मिल जाता था इसलिए लेखन में गति भी आयी साथ ही में समाजसेवा से भी जुड़ गयी. एक संस्था 'सिख स्त्री संस्था' दस महिलाओं को लेकर गठित हुई. पिछले नौ वर्षों से यह संस्था अपने कार्य पूरी लगन व निष्ठा से कर रही है.

वर्ष १९९७ में मेरा दूसरा कहानी संग्रह, २००२ में तीसरा 'मुसाफ़िर खाना' तथा २००७ में चौथा संग्रह 'एक और गंधारी' प्रकाशित हुआ. २००७ में ही पहला पंजाबी कथा संग्रह 'वापसी' प्रकाशित हुआ. एक और गांधारी को २००८ का महाराष्ट्र हिंदी साहित्य अकादमी का मुंशी प्रेमचंद प्रथम पुरस्कार घोषित किया गया. मार्च २००९ में यह पुरस्कार मुंबई में पद्मभूषण गुलजार के हाथों प्रदान किया गया. पुरस्कार पाने के मामले में भाग्यशाली रही हूं. अब तक लेखन व अन्य गतिविधियों में लगभग सौ पुरस्कार व सम्मान पा चुकी हूं. दिल्ली प्रेस की अखिल भारतीय कहानी प्रतियोगिता, स्वदेश (इंदौर) द्वारा आयोजित प. रामनारायण शास्त्री कहानी प्रतियोगिता, डॉ. महाराज कृष्ण स्मृति (अंबाला) कहानी प्रतियोगिता, स्पूतनिक (इंदौर) की दिनेश अवस्थी कहानी प्रतियोगिता, सामाजिक आक्रोश (सहारनपुर) द्वारा लघुकथा प्रतियोगिता, शुभ तारिका (अंबाला छावनी) द्वारा लघुकथा प्रतियोगिता सभी में पुरस्कृत हुई हूं. नौकरी के दौरान मेरे एक सहकर्मी ने मुझसे कहा था- 'आप अच्छा लिखती हैं लेकिन चर्चित होने के लिए विवादास्पद लेखन ज़रूरी होता है. अमृता प्रीतम, तस्लीमा नसरीन, शोभा डे जैसी लेखिकाएं इसकी गवाह हैं. आप भी क्यों नहीं ऐसा कुछ लिखतीं?' मैंने जबाब दिया था मैं चर्चित होने के लिए नहीं लिखती. मेरे मन में आसपास की घटनाओं को लेकर जो विचार उठते हैं मैं उन्हें कलमबद्ध करती हूं. लेखन को मैं एक सामाजिक कार्य मानती हूं. अनेक कहानियों में जीवन की कड़वी सच्चाइयों को उजागर किया है जिसके लिए पाठकों के प्रशंसा पत्र भी मिले हैं. अगर मेरा लेखन किसी की संवेदनाओं को स्पर्श करता है, किसी की समस्याओं के समाधान का कोई सूत्र इसके जरिए पाठकों के हाथ लगता है तो मैं इसे बड़ी उपलब्धि मानूंगी. मेरी दिली तमन्ना है जीवन के अंतिम क्षणों तक लेखनी मेरे हाथों में रहे और मैं सार्थक साहित्य सृजन करती रहूं.

लेखन व अन्य गतिविधियों में पति का सहयोग व प्रोत्साहन हमेशा मिलता रहा है. साहित्यिक कार्यक्रमों के लिए कई बार मुझे शहर से बाहर जाना पड़ा है. हर बार वे मेरे साथ बग़ैर ना नुकर के चल पड़े हैं. श्री विश्वनाथ (सरिता), श्री महाराज कृष्ण (शुभतारिका) श्री धीरेंद्र अस्थाना (जनसत्ता), श्री विश्वनाथ सचदेव (नवभारत टाइम्स), श्री सरोज कुमार (नई दुनिया), डॉ. अरविंद (कथाबिंब) ने मेरी रचनाओं को प्रकाशित कर हमेशा मेरा मनोबल बढ़ाया है. कई बार अपने सुझाव भी दिये हैं जिन्होंने मेरा मार्गदर्शन किया है. यहां की अनेक संस्थाओं, गुरुद्वारों आदि ने सम्मानित किया है लेकिन मैं आज भी स्वयं को बड़ी लेखिका या हस्ती नहीं मानती. लेखन से मुझे भीतरी ख़ुशी, आनंद, संतोष मिलता है.

'एक और गांधारी' पुस्तक का विमोचन २००७ दिसंबर में वरिष्ठ साहित्यकारा चित्रा मुदगल ने किया था तब उन्होंने मुझसे कहा था- अहिंदी प्रदेश के पिछड़े क्षेत्र मराठवाड़ा में, जहां हिंदी साहित्य की कोई विशेष पहचान नहीं वहां रहकर तुम हिंदी में अच्छा सृजन कर रही हो. अपने लेखन को कभी रुकने मत देना, निरंतर लेखनी चलाती रहना. कुछ कहानियां उन्होंने पढ़ी थीं और प्रशंसा भी की थी. तब से मैं फोन द्वारा उन्हें अपनी गतिविधियों, उपलब्धियों के बारे में बताती रहती हूं. हर बार वे प्रोत्साहित करती हैं बड़े प्रेम और अपनत्व से शुभकामनाएं देती हैं. हमारे क्षेत्र में जो भी गोष्ठियां, नाटक, कला, साहित्यिक गतिविधियां होती हैं वे केवल मराठी भाषा की ही होती हैं, हिंदी तो केवल कॉलेज, विश्वविद्यालय के खानापूर्ति करनेवाले कार्यक्रमों तक ही सीमित है. कुछ वर्ष पहले हिंदी भाषियों ने साहित्य मंच बनाया था लेकिन वह भी अधिक समय चल नहीं पाया. अतः ऐसे विपरीत नकारात्मक माहौल में रहकर जितना लिख पाती हूं उससे ही संतोष प्राप्त कर लेती हूं.

१८४, सिंधी कॉलोनी, जालना रोड,
औरंगाबाद (महाराष्ट्र)-४३१००५
मो- ९३२५२६१०७९

बाइस्कोप

लाखों में एक सदाबहार - 'गुलज़ार'

✍ सविता बजाज

(साहित्य और फ़िल्म का चोली दामन का साथ है. हमारे विशेष अनुरोध पर जानी मानी फ़िल्म, टी.वी., मंच कलाकारा व पत्रकार सुश्री सविता बजाज 'कथाबिंब' के लिए चलचित्र जगत से संबद्ध साहित्यकारों के साथ बिताये क्षणों को संस्मरण के रूप में प्रस्तुत कर रही हैं. अगले अंकों में पढ़िए सुधाकर शर्मा, बी.आर.इशारा, इम्तेयाज़ हुसैन आदि के बारे में.)

मैं तन, मन, धन को हाज़िर नाज़िर करके कहती हूं कि इस पूरे संसार की ज़मीं पर अगर गुल जैसे नाज़ुक शायर, पेंटर, निर्देशक, संवाद लेखक, गीतकार, सितार वादक, इंसानियत से लबालब इंसान अगर पैदा हुआ है तो वह सदाबहार गुलज़ार है. यूं तो पचासों लोग धरती पर किसी न किसी क्षेत्र में नाम पैदा करते हैं लेकिन सही मायने में गुलज़ार समय की धारा में बह जाते हैं. नौजवान या बुज़ुर्ग पीढ़ी के रंग में अपने आपको रंग लेते हैं, उनके साथ क़दम से क़दम मिलाकर चलते हैं. तभी तो कजरारे-कजरारे गीत धरती के एक कोने से समंदर पार के दूसरे देशों तक पहुंच जाते हैं. और लोग ताल से ताल मिलाकर गाने के साथ झूमने लगते हैं.

मैंने महिलाओं को गुलज़ार के लिए आहें भरते देखा है. आंसू बहाते देखा है, उनकी दीवानगी देखी. क्योंकि गुलज़ार की कशिश ने उन्हें पागल कर दिया था. ठीक उसी तरह जैसे राजेश खन्ना के लिए औरत जात उनकी दीवानी थी. ख़ून से उन्हें प्रेम-पत्र लिखती थी, उनके चित्र बनाती थी. गुलज़ार के मन की सुंदरता, लेखनी का जादू और उनकी पर्सनिलिटी में इतनी ज़्यादा कशिश है कि पूछिए मत. ठीक उसी तरह जैसे चंदन के पेड़ से लिपटा सांप, चंदन की ख़ुशबू से पागल, बावरा हो सर पटक-पटक कर रह जाये और हाथ कुछ भी न आये. मैंने आनंद फिल्म मैं गुलज़ार द्वारा लिखे संवाद बोले थे. रोल तो बहुत छोटा सा था नर्स का लेकिन गुलज़ार का नशा मुझ पर भी छाया था. मैं इन्हें बंगाली समझ बैठी थी क्योंकि गुलज़ार को बंगाली सभ्यता से प्यार है और बरसों बंगालियों के साथ उठे बैठे, काम किया.

पत्नी राखी भी बंगाली. अपनी फ़िल्मों में भी ज़्यादातर बंगाली हीरोइनों को लिया जैसे शर्मिला टैगोर, सुचित्रा सेन वगैरह. आनंद फ़िल्म तो भारतीय फ़िल्म इतिहास की एक अनमोल धरोहर है.

गुलज़ार समय के साथ सफलता की सीढ़ियां चढ़ते-चढ़ते एक महान व्यक्तित्व का धनी कहलाया. आये दिन, नये-नये करिश्में होने लगे. झोली अवार्डों से भरने लगी. लेकिन कहते हैं न हर नामी हस्ती को जीवन में कुछ पाने के साथ-साथ कुछ खोना भी पड़ता है. लिहाज़ा पत्नी राखी के साथ संबंधों में दरार पड़ गयी. वह इन्हें छोड़ गयी और गुलज़ार बेटी मेघना का हाथ थामे, नयी नयी ऊंचाइयों को छूता गया. बेटी मेघना आज एक सफल राईटर, फ़िल्म मेकर और निर्देशक है जो पिता के लिए एक बड़ी उपलब्धि है. गर्व की बात है. मेघना शादी-शुदा है और पति के साथ घर गृहस्थी का भरपूर आनंद उठा रही है. समय किसी का इंतज़ार नहीं करता. अपनी द्रुतगति से बढ़ता रहता है और गुलज़ार ने भी अपनी लेखनी के जादू से सिनेमा में नये-नये आयाम स्थापित किये.

गुलज़ार से मेरी अक्सर मुलाकात होती थी. आज भी होती है. कभी विविध भारती स्टूडियो में जहां मैं फ़िल्मी हस्तियों के साक्षात्कार लिया करती थी या किसी दूसरे फ़िल्मी या साहित्य प्रोग्राम में. मतलब हम दोनों का संपर्क बराबर बना रहा. कभी मेरा बहुत जी चाहता मिलने को तो मैं उनके दफ़्तर पहुंच जाती. इस

बहाने शायद कभी मैं इनके निर्देशन में अपनी अभिनय प्रतिभा किसी बड़े रोल में दिखाऊं. छोटे-छोटे तो ढेर सारे पात्र निभा चुकी थी. कभी सीरियल फ़िल्म 'लिबास' में नौकरानी, क्योंकि उन दिनों 'निशांत' फ़िल्म से मुझ पर नौकरानी का ठप्पा जो लग चुका था. मैं हर फिल्म मेकर को मना कर देती. लेकिन गुलज़ार को न नहीं कह सकी, क्योंकि वे गुलज़ार थे. खैर, एक बार गुलज़ार का फ़ोन आया मुंशी प्रेमचंद की कहानी 'बूढ़ी काकी' करने का. मैं भागी-भागी पहुंची पैर छुये और ख़ूब मेहनत की. मेरी मेहनत रंग लायी और गुलज़ार बोले सविता बढ़िया काम किया. मुझे भी रुला दिया. मैं गुलज़ार साहब के बारे में इतना ही कह सकती हूं कि गुलज़ार ने 'कोशिश', 'आंधी', 'माचिस', 'मीरा' जैसी मन को छू लेने वाली अनमोल कृतियां तो बनायी ही, 'बूढ़ी काकी' का चरित्र गढ़ना सिर्फ़ और सिर्फ़ गुलज़ार के ही बस की बात है. कभी इन्हें मुझ पर बहुत स्नेह होता तो कहते सविता आप तो बस मेरे गले लगा करो.

गुलज़ार साहब ढलती उम्र में भी पहले जैसे सदाबहार लगते हैं. चेहरे पर कोई शिकन नहीं. हां, बालों में कहीं कहीं चमकती सफ़ेदी इन्हें ज़्यादा सुंदर बनाती है. लिबास, वही पुराना, चकाचक चमकता सफ़ेद, पैरों में सुनहरे तिल्लेवाली, पंजाबी जूतियां और नज़र का चश्मा. चश्मे में से झांकती ख़ूबसूरत नशीली आंखें आपको अगर एक बार देख लें तो कयामत आ जाये. आजकल इनका रुझान रंगमंच की तरफ़ भी ज़्यादा है. ख़ूब योगदान देते हैं वहां. हां, एक बदलाव ज़रूर आया है, पहले पुराने ऑफिस में मीना कुमारी की एक बड़ी सी रंगीन पेंटिंग थी जिसमें उनके लंबे लहलहाते, खुले बाल थे. आज नये बंगले में ही ऑफिस है. ऊपर वाले माले पर घर और नीचे ऑफिस. ऑफिस में महात्मा बुद्ध के ख़ूब सारे स्टैचू हैं और लेखक की मेज़ पर ख़ूबसूरत ताज़े लाल गुलाब, जो यह दर्शाते हैं कि इस सदाबहार इंसान को जीवन के रंग बहुत प्यारे हैं और फूलों की ताज़गी और महक सारे वातावरण को गुलज़ार करती है. ठीक उसी तरह जिस तरह गुलज़ार की लेखनी अपने रंगों के जादू से सब पर जादू करती है. तभी तो यह शख्स गुलज़ार कहलाता है.

द्वारा श्री साईनाथ एस्टेट,
डी-३, बी-२, सह्याद्री नगर,
चारकोप, मुंबई-४०० ०६७
फोन : ९२२३२०६३५६

लघुकथा

मनुहार

राधेश्याम पाठक

पिछले तीन दिनों से वह बूढ़ा फकीर बस्ती में नहीं आया. रामदयाल मेरे घर से छः घर आगे रहते हैं. मेरे पास आकर बोले- ''मिश्राजी, फकीर बाबा तीन दिन से नहीं आ रहे हैं.' बच्चे कटोरी में आटा लेकर उनका इंतज़ार कर रहे हैं. उनकी....''

तभी फकीर बाबा आते दिखाई दिये. मैंने अधीरता से पूछा- ''पिछले तीन दिन से नहीं आये.''

फकीर बाबा की आंखों से आंसू छलक पड़े. रुंधे कंठ से बोले- ''मैं दंगे के भय से नहीं आया.

''यहां कुछ नहीं होगा बाबा, यह इंसानों की बस्ती है, हैवानों की नहीं. आप रोज़ आया करें.''

तभी नन्हें बच्चों का समूह बाबा के सन्मुख आकर खड़ा हो गया. सबकी आंखों में मनुहार के भाव थे.

बाबा गद्‌गद् होकर बोले- ''मैं पहले की तरह ही रोज़ आऊंगा. इंसानों की बस्ती में भय कैसा.''

LIG-II-१४ ''औदुंबर भवन''
सांदीपनि नगर, विश्वबैंक कॉलोनी,
आगरा रोड, उज्जैन

निवेदन

इस अंक के साथ जिन ग्राहकों का शुल्क समाप्त हो रहा है उनसे निवेदन है कि शीघ्र ही अपने ग्राहक शुल्क का नवीनीकरण करा लें.

-संपादक

पुस्तक-समीक्षा

कड़वी सच्चाई से रूबरू - सफ़रनामा

✍ संतोष श्रीवास्तव

डेरा बस्ती का सफ़रनामा (उपन्यास) : **डॉ. सतीश दुबे**
प्रकाशक : दिशा प्रकाशन, १३८/१६, त्रिनगर, दिल्ली-११००३१, **मू.** २००/- रु.

'डेरा बस्ती का सफ़रनामा' वरिष्ठ लेखक डॉ. सतीश दुबे का सद्य प्रकाशित उपन्यास है जो जिस्म का सौदा एक प्रथा के रूप में करनेवाली 'बांछड़ी जाति' के विभिन्न पहलुओं को रेखांकित करता है. इस उपन्यास को पढ़कर मेरे मन में कई सवालों ने खलबली मचा दी और एक स्वस्थ समाज की मेरी कल्पना धराशायी हो गयी. अभी तक इस घिनौने पेशे की मजबूरी ही मैं जानती थी किंतु अब एक घिनौनी प्रथा से भी रूबरू हुई हूं. बांछड़ा समाज जो कि नीमच, मंदसौर और रतलाम के आसपास के गांवों, जंगलों में निवास करता है और अपने घर की बेटियों पर सामाजिक प्रथा का दबाब डाल उनसे जिस्म का सौदा कराके अपना भरण पोषण करता है.

उपन्यास शुरू होता है पत्रकारिता जगत में प्रवेश करने जा रहे नौजवानों और उनकी प्राचार्या शंभवी शैल के बांछड़ा जाति पर शोधपरक खोजी पत्रकारिता करने और उस पर 'इनडेप्थ रिपोर्टिंग' के माध्यम प्रोजेक्ट प्रारूप तैयार करने की अपनी योजना से. लेकिन इसके लिए उन क्षेत्रों का दौरा आवश्यक था अतः पत्रकारों की यह टीम इन इलाकों के दौरे के लिए निकल पड़ती है. ऊबड़ खाबड़ मार्ग, नयी जगह तिस पर पूरी की पूरी जरायमपेशा जाति के बारे में तथ्य एकत्रित करने की कवायद लेखक के अपने विजन को स्पष्ट करती है. अख़बार की बाज़ार में बदलती जा रही भूमिका से वे चिंतित हैं- प्रिंट या इलेक्ट्रॉनिक मीडिया मालिकों के स्वार्थ को भुनाने का औजार हो गया है. ऐसे माहौल में समाज की निग़ाह में हिकारत की दृष्टि से देखी जानेवाली इस क्षेत्र की बांछड़ा जैसी जाति के बारे में लेखन के बारे में आप लोगों द्वारा कुछ सोचे जाने का अर्थ है, युवा पत्रकारों की विचारधारा में बदलाव की आहट. उनकी चिंता वाजिब है लेकिन पत्रकारों का प्रयास भी एक नयी दिशा की ओर संकेत करता है.

बांछड़ा जाति के डेरों को बदनाम बस्ती के नाम से जाना जाता है और उन डेरों पर औरतों के जिस्म बिकते हैं. राह चलते मुसाफिर, ड्राइवर, शराबी इनके कज्जा यानी ग्राहक होते हैं और जिसे ये बाप दादाओं के ज़माने से चली आ रही प्रथा कहते हैं. प्रथानुसार हर घर की एक लड़की को धंधे पर बिछाना ज़रूरी होता है. धंधे पर बैठनेवाली औरत को खिलावड़ी और शादीशुदा गृहस्थ औरत को भत्तावड़ी या भरतारी कहा जाता है. लेखक ने इस जाति की गहराई में जाकर औरतों के रहन-सहन, चाल चलन, रीति रिवाज की पड़ताल की है. साथ ही इनकी बस्तियों, डेरों की हर हकीकत से रूबरू कराया है. कहना न होगा कि लेखक ने बांछ़ड़ा जाति पर पूरा अनुसंधान कार्य किया है. इस जाति के जरायमपेशा अपना लेने की मजबूरी, परिणाम आदि से अवगत कराते हुए वे पाठकों के लिए उस सामग्री को उपलब्ध भी करा देते हैं कि कैसे इस प्रथा ने जन्म लिया, कैसे प्रचलित हुई और कैसे इसे मान्यता प्राप्त हुई. इस सामाजिक स्वरूप के सांस्कृतिक पक्ष का वर्णन भी उन्होंने बड़े एहतियात से किया है. आज जब स्त्री विमर्श पर इतना कुछ लिखा जा रहा है, बहस मुबाहिसें हो रहे हैं, लेखक ने सहज ही बांछड़ा स्त्री का दैहिक शोषण, उसकी विवशता, अस्मिता चित्रित कर एक बड़ा सवाल ला खड़ा किया है कि इन स्त्रियों का जीवन क्यों हाशिए पर ढकेल दिया गया है. महिला संगठन, महिला आंदोलनों की पहुंच इन तक क्यों नहीं?.... क्यों इन्हें इस नारकीय जीवन से छुटकारा नहीं मिल रहा है. जबकि एक सर्वेक्षण के अनुसार इनमें काफ़ी बदलाव आया है. महिलाएं पढ़ लिखकर राजनीति में भाग ले रही हैं और कई पंच, सरपंच हैं फिर भी यह पेशा बदस्तूर चालू है.

लेखक ने मीडिया तंत्र के हस्तक्षेप के प्रति चिंता व्यक्त की है कि जनता तक जो ख़बर पहुंचती है उसमें इतनी तोड़-मरोड़ होती है कि असलियत पर पर्दा पड़ा जाता है.

Rahul.khilmnni@timesgroup.com

उपन्यास अपने तथ्यपरक स्वरूप में बहुत निखरकर कथा प्रस्तुत करता है और पाठक में सब कुछ जान लेने की जिज्ञासा जगाये रखता है. बांछड़ा के उद्‌भव, विकास, वेश्यावृत्ति को परंपरा का नाम देने के पीछे छिपी कहानी और आधुनिक समाज में इस जाति का परिवर्तित स्वरूप लेखक ने बख़ूबी और रोचक शैली में लिखा है.

ख़ोजी पत्रकारिता के रोचक पहलुओं को लिखते हुए कहीं भी मूल कथा डिस्टर्ब नहीं होती. दोनों अलग-अलग कोणों का जोड़, कथा के प्रवाह के संग-संग चलता है. बाछड़ा जाति का हर पक्ष उभरकर सामने आया है. अंत में शंभवी शैल रिपोर्ट पेश करती हैं- ''इसके कारणों परिणामों की व्याख्या प्रस्तुत रिपोर्ट में है. किंतु मेरा यह मानना है कि यह प्रथा नहीं, अपने स्वार्थ और ज़रूरत के लिए निकम्मे पुरुष वर्ग द्वारा नारी को हथियार बनानेवाली सोची समझी साज़िश है. एक भूभाग विशेष के कई गांवों में इस व्यापार का खुलेआम वर्षों से चलते रहना क्या तथाकथित सामाजिक विकास और प्रगति का ढिंढ़ोरा पीटनेवालों के लिए शर्मसार करनेवाला प्रसंग नहीं है?''

शायद यह रिपोर्ट लेखक की सरकार के प्रति खुली गुज़ारिश है कि वह चेते और इन्हें इनके घिनौने कृत्य से छुटकारा दिलाये या फिर पुस्तक की भूमिका में लेखक का बयान कि अपनी शाब्दिक अभिव्यक्ति के माध्यम से व्यक्ति, परिवार तथा समाज में ऐसा कुछ घटित हो रहा है जो मानवीय मूल्यों से, मनुष्यता से परे है, उसकी तस्वीर सामने ला सकूं ताकि बेहतर ज़िंदगी जीने के प्रकृतिदत्त अधिकार को प्राप्त करने की सामान्य आदमी की लड़ाई में अपनी लेखकीय भागीदारी साबित कर सकूं. लेखक की कलम ने एक साथ कई तरह के कोलाज दिखाकर बांछड़ा जाति को हाशिए से उठाया है और कई तरह के भाव विन्यास, तेवर, संवेदनाएं और द्वंद्वों को रेखांकित किया है. कहीं-कहीं औपन्यासिक कला की अपेक्षा समाचार बताने का कौशल सक्रिय हुआ है. लगता है जैसे टी.वी. के समाचार चैनल के जरिए हम बांछड़ा डेरों, बस्तियों की सैर कर रहे हैं.

लेखक ने अपने नये कौशल और नये औपन्यासिक रूप के साथ कथ्य को पाठक तक पहुंचाने में सफलता पायी है. निश्चय ही यह उपन्यास बांछड़ा जैसी पिछड़ी जाति को मुख्यधारा से जोड़ने में सहायक सिद्ध हुआ है.

✍ **१०२,सद्‌गुरु गार्डन, तरुण भारत सोसाइटी, चकाला, अंधेरी (पूर्व), मुंबई-४०० ०९९**

कुछ अपने, कुछ हमारे सपने

✍**देवदत्त वाजपेयी**

अपने अपने सपने (ल.क.संग्रह) : **घनश्याम अग्रवाल**
प्रकाशक : दिशा प्रकाशन, १३८/१६, त्रिनगर, दिल्ली-११००३५. **मूल्य** : २०० रु.

घनश्याम अग्रवाल की सृजन यात्रा में ''हंसी के आइने'' एवं ''आज़ादी की दुम'' के बाद ''अपने अपने सपने'' इक्यानवे लघुकथाओं की मणिमाला है जिसमें जीवन के विविध क्षेत्रों में जिये हुए क्षण, संवेदनाएं एवं मर्मस्पर्शी अनुभूतियों के विविध रंगों के साथ एक अद्‌भुत चमक भी है. इतस्ततः बिखरे इकाई अनुभवों को लघुकथाओं का रूप देकर एक नया आयाम स्थापित किया है.

''अपने अपने सपने'' पुस्तक में ग्यारह घटक हैं जो स्वयं विषय विशेष से संबंधित लघुकथाओं के पुष्पगुच्छ हैं. बाल विमर्श घटक में ''तुलसा का कलसा'' एक उत्कृष्ट लघुकथा है जिसमें सुंदर शब्दों के प्रयोग से ग़रीब तुलसा के निश्छल, निष्पाप, निष्कलंक एवं पवित्र स्वाभिमान का लेखा-जोखा प्रस्तुत किया गया है. चालीस गांव का बैंड, इंदौर की आतिशबाजी, जैसे मन-रंजन प्रकरण का आधार लिये बालश्रम की लघुकथा ''रोशनी ढोते हुए'' अत्यंत मर्मस्पर्शी है. अमीर-ग़रीब के बीच भ्रामक दूरी को नकारते हुए चार बरस की लीली का भोलापन, आधुनिक जीवन के प्रति कटाक्ष है, ''हैसियत''. संतान की इच्छुक एक मां की मनःस्थिति उसके मन का उहापोह, विचारों की बारीकियों की लघुकथा है- ''बच्चे की जान'', एक मामूली सा पात्र - वेटर-क्लीनर के जीवन को आत्मसात कर लेखक ने ''नजात'' लघुकथा लिखी है.

नारी विमर्श घटक में ''औरत का गहना'' किसी

उपन्यास के कैप्सूल सी लघुकथा है. 'हया औरत का सबसे बड़ा गहना होता है फिर गहने मुसीबत में ही तो बेचे जाते हैं' जैसे वाक्य पाठक को कुछ सोचने के लिए मजबूर कर देते हैं. ''मदद'' लघुकथा में ''साठ वर्षीय बूढ़े'' जैसे शब्दों द्वारा वार्धक्य को जताया गया है किंतु आज के समय में साठ वर्षीय बूढ़ा नहीं कहा जा सकता, भले ही वह सेवानिवृत्त ही क्यों न हो गया हो. ''सुरक्षित स्थान'' लघुकथा एक सुंदर जवान मछेरिन के आत्म-सम्मान की कथा है जो आपतस्थिति में भी समाज की विकृति इंगित करती है. ''तीन सास'' पुरातनपंथी पृष्ठभूमि में लिखी एक उत्कृष्ठ रचना है.

दंगा विमर्श के अंतर्गत ''मज़हब की क़ीमत'' में - 'मैं तो एक भिखारी हूं बाबा. मेरा क्या मजहब? किसी ने भगवान के नाम पर चार आने दिये तो हिंदू हो जाता हूं और किसी ने अल्लाह के नाम पर चार आने दिये तो मुसलमान हो जाता हूं.' पंक्तियां एक भिखारी की मजबूर मनःस्थिति का बखान करती है. ''निष्कर्ष'' लघुकथा में धर्म निरपेक्षता की विचित्र परिभाषा दी गयी है जो भारतीय धर्म निरपेक्ष जीवन का कटु यथार्थ है. ''भीतर का आदमी'' वस्तुतः गागर में सागर है. धर्म निरपेक्षता की कोई कितनी भी दुहाई दे किंतु मन के अंदर धर्म के प्रति झुकाव एक यथार्थ है, भले हम इसे 'हिपोक्रेसी' की संज्ञा दें. ''शिनाख़्त'' दंगे की एक भयावह तस्वीर है.

''सबका मालिक एक'' में मंदिर-मस्जिद से उत्तम अशर्फियों का दर्जा दिखाया गया है. ''रियायत'' एवं ''तोता तोती'' को यदि कोई चुटकुला कहा जाय तो कोई ग़लत न होगा, केंद्र बिंदु तो महज हिंदू मुसलिम का झगड़ा ही है, बस!

राजनीति विमर्श के घटक में ''आज़ादी की प्यास'' अत्यंत सुंदर लघुकथा है जो अपने में स्वतंत्रता की भावना, राजनीति एवं दलित मनःस्थिति समेटे एक ऐसी रचना है जिसे पढ़कर पाठक को बरबस प्रेमचंद स्मरण हो आते हैं. ''मसीहा की मौत'' एक सारगर्भित लघुकथा है. ''गांधी की भ्रूणहत्या'' एक विचारोन्मेषक कटाक्ष की पराकाष्टा है जिसमें पौराणिक कथाओं का आधार लेकर आजकल की चुनावी राजनीति के अधोपतन का नंगा चित्र खींचा गया है. ''बड़ी मछली छोटी मछली'' में मच्छरों का मानवीकरण करके बड़ी हिकमत से बात कही गयी है. ''एकलव्य का अंगूठा'' एक सुंदर रूपक है, एक कटाक्ष है जिसमें राजनेता और राजनीति को बयान करने का एक नायाब ढंग प्रस्तुत किया गया है. ''भूख और समाजवाद'' में समाजवाद की आड़ में देश की दयनीय स्थिति का कटाक्षपूर्ण वर्णन है. ''संतान के पांव'' कटाक्ष और चुटकुले का मिला-जुला रूप है. 'मिनिस्टर टस से मस न हुआ' बात कहने के लिए लेखक ने लघुकथा ''अंगद की विजय'' में पुराणपुरुषों का अनर्गल अवलंब लिया है.

भ्रष्ट सपनों के विमर्श के घटक में आठ लघुकथाएं हैं- 'ईमानदार की खोज' एक सुंदर लघुकथा है जिसमें 'ईमानदार' की एक नवीन परिभाषा दी गयी है. ''गति का गणित'' एक उत्तम लघुकथा है जिसमें एक मर्मस्पर्शी कटाक्ष है और लालफीताशाही के लिए एक तमाचा है. ''नैतिकता'' में कल्पनातीत कटाक्ष है. ''सरकारी गणित'' सरकारी महकमों में व्याप्त भ्रष्टाचार की एक नंगी तस्वीर है.

विवशता व ग़रीबी विमर्श घटक नौ लघुकथाओं का संकलन है. ''मिल का भोंपू'' में भोंपू का मानवीकरण कर मजदूरों की बस्ती की एक मर्मस्पर्शी कथा कही है. 'रोटी के अभाव में न केवल मां के स्तनों का दूध सूखता है, बल्कि वह दुधमुंहा भी सूखता है जिसने अभी तक रोटी नहीं चखी' जैसे वाक्य हृदय की गहराइयों तक प्रभावित करते हैं.' ''एक री-टेक और'' एक बूढ़े एक्स्ट्रा की मनोरंजक व्यथा कथा है. ''सिलेक्शन'' में भिखारी को भी नौकरी करते (भीख मांगते) दिखाया गया है. ''मजे की क़ीमत'' में रिक्शेवाले के शब्द- 'वहां मजे से नहीं मजबूरी से जाता है', मस्तिष्क में देर तक गूंजते हैं. ''एक और ताज़महल'' एक अद्भुत शब्दचित्र है. इस लघुकथा में कल्पना की मौलिकता श्लाघनीय है. ''अद्रक के पंजे'' में साधारण सी बात को निराले ढंग से कहा गया है.

हास्य परक लघुकथाओं के घटक में पांच रचनाएं हैं. ''धमकी और धमाका'' में इस बात को साबित किया गया है कि एक संगीतकार ललितकला का पुजारी होते हुए कैसे अत्याचारी हो सकता है. श्रोता और तालियां प्रत्येक कवि की कमजोरी होती है, इस तथ्य पर गढ़ी गयी लघुकथा है- ''कवि की तपस्या.''

''महान देश'' पर आधारित नौ कहानियों के इस घटक की प्रथम रचना ''पर्यावरण विद्'' एक उत्कृष्ट रचना है- 'तांगे को घोड़े की जगह एक आदमी खींच रहा था.' जानवरों के प्रति उदार दृष्टिकोण का प्रतीक बताया गया है. ''ज़िंदाबाद-मुर्दाबाद'' में सर्कस कंपनी के जानवरों का मानवीकरण करके अदभुत कटाक्ष की स्थिति उत्पन्न की गयी है. ''सबसे सस्ता हिंदुस्तान'' लघुकथा में पत्रकारिता जगत का अधोपतन तो दिखता है, देश की दुर्दशा भी जग जाहिर होती है. ''पुरस्कार'' में गप्प भी भारतीय समाज की एक सच्चाई प्रस्तुत करती है. अन्य कहानियां सामान्य हैं.

अन्य कई रंगों की लघुकथाओंवाले घटक में बारह लघुकथाएं हैं. ''एक रूमानी सच'' एक ऐसी लघुकथा है जो अपने गर्भ में एक उपन्यास संजोये है. ''मन की ख़ुशी'' में बुढ़ापे में बाप बनने की कितनी ख़ुशी होती है कि आदमी यह भी भूल जाता है कि वह अपनी ख़ुशी किसके सामने व्यक्त करता है. ख़ुशियों का एक बुलबुला- यानी हर्ष का सैलाब! ''आस्तिक नास्तिक'' में स्थिति के अनुरूप विचारों में बदलाव की अनूठी मिसाल दी गयी है. ''भूख की क़ीमत'' एक सुंदर कल्पना है. ''फासला'' में मौत की छलांग लगानेवाले आदमी ने कहा- 'लोग इसे मौत की छलांग कहते हैं और रोमांचित होते हैं. पर मैं बिल्कुल नहीं डरता. मेरे लिए मौत की नहीं ज़िंदगी की छलांग होती है- डर मौत से लगता है- ज़िंदगी से नहीं,' कहानी का चरम बिंदु है. 'अभिनेता' लघुकथा एक आदर्श रचना है जिसमें हिंदुत्व और मुसलमानियत में नायक इतना घुलमिल गया कि अपनी जाति, कौम भुला बैठा.

''तीन और एक, चार बुद्धिजीवी'' में कथाकार ने कहा है कि भीख देने के लिए पात्र चाहिए किंतु वजह नहीं. कथा ''राम लक्ष्मण'' में कथाकार के सोचने में मौलिकता है - विचारों की उड़ान किसी कथावाचक के प्रवचन तुल्य है. ''एक बार फिर'' में स्वयं को पुण्यात्मा बताने का पाखंड चर्चित है.

घनश्याम अग्रवाल की आपबीती सी लघुकथा ''गुब्बारे का खेल'' एक ललित रचना है जिसे कदाचित पुस्तक के आरंभ में होना चाहिए.

आजकल जबकि पाठकों के पास उपन्यास, कहानियां, काव्यग्रंथ पढ़ने का पर्याप्त समय नहीं है, तब रचनाकारों, कवि-लेखकों ने लघुकथाओं और लघु कविताओं (जैसे-हाइकू, क्षणिकाएं आदि) की रचना करना प्रारंभ किया है ताकि पाठकों की रुचि को सीमित समय के अनुसार संतुष्ट किया जा सके. इस प्रयाजोन में घनश्याम अग्रवाल का लघुकथा संग्रह ''अपने अपने सपने'' अत्यंत उपयोगी है. यह पुस्तक व्यस्त पाठकों के लिए अत्यंत, उपयोगी, मनोरंजक एवं संग्रहणीय मूल्यवान वस्तु है.

✍**फ्लैट नं २०२, टावर न. ४, सागर दर्शन, सेक्टर १८, नेरुल, नवी मुंबई-४००७०६**

दोहों से भरपूर अंजुरी

✍**नंदलाल पाठक**

अंजुरी अंजुरी धूप (दोहा-संग्रह) : **चंद्रसेन 'विराट'**
प्रकाशक : समांतर प्रकाशन, तराना (उज्जैन).
मूल्य : २०० रु.

दोहा सदियों से हिंदी काव्य की अनमोल धरोहर रहा है. दोहा ऐसा मुक्तक है, जो खंडकाव्य, प्रबंधकाव्य और महाकाव्य में भी अपनी जगह बनाये हुए है. केवल ललित साहित्य में नहीं, ज्ञान की किसी भी शाखा को चिरस्थायी अभिव्यक्ति देने में दोहे की उपयोगिता सर्वमान्य है.

चंद्रसेन विराट का दोहा संग्रह ''अंजुरी अंजुरी धूप'' आपकी अंजलि को दोहों से भर देता है. एक साथ, एक जगह इतने दोहे! आप आशांवित हो उठते हैं कि बहुत कुछ मिलेगा. दोहे की परंपरा ही ऐसी है कि वह संक्षिप्त होते हुए भी सारगर्भित अभिव्यक्ति है. कहना न होगा कि विराट का यह विराट संग्रह आपको निराश नहीं करता, बल्कि आप दोहे पर दोहे पढ़ते जाते हैं और फुरसत से फिर पढ़ने के इरादे से संग्रह रख देते हैं.

'अंजुरी अंजुरी धूप' की संपन्नता के पीछे विविधता का भी योगदान है. यह तो सर्वविदित है कि दोहे के छंदात्मक रूप के साथ कोई खिलवाड़ नहीं किया जा सकता और इसीलिए दोहा चिरजीवी भी बना रहा.

दोहे के भीतर कथ्य की अपार संभावनाएं अवश्य हैं जिनकी ओर चंद्रसेन जी का ध्यान गया है और जिसका आनंद पाठकों को उपलब्ध है. अब रचनाकार के कृतित्व से साक्षात्कार कर लिया जाय.

अनुशासन यह छंद का पूरा सुष्ठु सटीक ।
या तो पालो ही नहीं, पालो तो हो ठीक ।।

यह एक विनम्र निवेदन भी है, एक चेतावनी भी और छंदों की गरिमा के साथ खिलवाड़ करनेवालों के लिए एक चुनौती भी. संग्रह के दोहे रचनाकार के दीर्घ अनुभव और गहन निरीक्षण की देन हैं.

आयु न हो जाये ख़त्म, बस सहेजते कोष ।
दाता धन तो दे मगर, दे मन को संतोष ।।

दोहे ही दोहे! दोहे नीति के शृंगार के व्यंग के, विनोद के.

कुछ और देखिए....

आज तुम्हारा वक़्त है, आज तुम्हारा दौर ।
कभी हमारा भी रहा, हम भी थे सिरमौर ।।
यह सोलह की आयु है वयः संधि का वर्ष ।
बचपन का अपकर्ष तो यौवन का उत्कर्ष ।।

जीवन और जगत में कवि का स्वतंत्र विचरण चिंतन और मनन का सम्मिलित रूप है यह 'दोहाकोष.'

चंद्रसेन विराट अपनी भाषा की विशिष्टता के लिए भी जाने जाते हैं. पर यहां कई दोहों में उन्होंने भाषाई शार्टकट से काम लिया है. हिंदी की संयुक्त क्रियाएं संक्षिप्त होते ही अपना बल खो देती हैं. 'जाता' से 'जाता है' का काम नहीं लिया जा सकता. भले ही आप सीमित मात्राओं का छंद दोहा लिख रहे हों.

हरे हरे लहरा रहे, भरे धान के खेत ।
ठंडक पातीं देखकर, आंखें हृदय समेत ।।

हिंदी का विदेशी विद्यार्थी या व्याकरण भक्त 'पातीं, को 'पाती है' माने या काल परिवर्तित किया? यह प्रश्न पूछने का अधिकार पाठक का है. हिंदी की संयुक्त क्रिया संयम की मांग करती है. 'पातीं' में कई दिशाएं हैं. किधर जायें ?

कवि ने बहुत से दोहे सायास लिखे हैं किंतु बहुत से दोहे ऐसे भी हैं जो अनायास अवतरित हो गये हैं. उनके लिए कवि को बधाई.

१२, अमिताभ, १२५, मॉडल टाउन, अंधेरी, मुंबई-४०००५३

लघुकथा

प्रीत का अंजन

आनंद बिल्थरे

वह प्रीत का अंजन लगाकर घर से निकला दी. लेकिन देह व्यापार के दरिंदो के हाथ पड़ गई. उन्होंने उसे हर तरह से डराया, धमकाया, ललचाया किंतु वह इस दलदल में उतरने पर तैयार नहीं हुई.

अंत में उसे तैयार करने के लिए प्रशिक्षण गृह में भेज दिया गया. वहां उसे पीटा गया, दागा गया, भूखा रखा गया, कुंये में लटकाया गया, लेकिन वह तब भी नहीं टूटी. अब, अंतिम अस्त्र के रूप में उस पर सामूहिक बलात्कार का निर्णय लिया गया.

एक रात खूंखार से लगनेवाले मवाली ने उसे दबोच लिया. उसने उसके कपड़े तार-तार कर डाले. वह किसी तरह उसके चंगुल से निकली और मसाला पीसनेवाला पत्थर उसके सिर पर दे मारा. वह वहीं चित्त हो गया.

अभी वह अपनी सांसें सहेज ही रही थी कि दूसरे गुंडे ने हमला बोल दिया. उसने उसे धरती पर पटक दिया. गिरते-गिरते भी उसने उसके बाजू में अपने दांत गड़ा दिये. जैसे ही वह छिटककर दूर हुआ, उसने उसकी आंखों में मिर्च झोंक दी. वह तड़फकर घायल भेड़िए की तरह, कमरे में चक्कर लगाने लगा.

उसने जल्दी से साड़ी लपेटी और बाहर निकलने के लिए कदम बढ़ाया ही था कि एक भोले-भाले मासूम सी आंखों वाले सुदर्शन युवक ने भीतर से प्रवेश किया. उसे देखते ही उसके पांव धरती से चिपक गये और इच्छा शक्ति ने जवाब दे दिया.

वह युवक कोई और नहीं, उसका वही प्रेमी था, जिसके साथ उसने घर की दहलीज़ लांघी थी.

प्रेमनगर, बालाघाट (म.प्र.) ४८१००१.

कविताएं

एक और मैं

✍ पद्मजा सेन

बरसों से मेरे पीछे
दबे पांव आहटहीन चलता है कौन, न जाने !
अचानक पलटकर
जब भी देखना चाहती हूं
छिप जाता है
किसी अदृश्य कोने में,
और
मेरे मुड़ते ही फिर से चलने लगता है.
कुछ फासला रखकर सतर्क क़दमों से.
मैं फिर नहीं मुड़ती
लेकिन मेरे सिर के पीछे
मानो अदृश्य दृष्टि उग आती है
जो देखती रहती
वो अभी भी चल रहा है,
उसी तरह आहटहीन, सतर्क और नीरव!
मेरी हर गतिविधि पर चौकन्नी नज़र रखे,
इसी तरह गुज़रे हैं
दिन
महीने और वर्ष.
मैं चलती हूं,
वो चलता है
और मैं जानती हूं
मेरे रुकते ही
वो भी रुक जायेगा.

✍ डी.पी.सिंह रोड, चाईबासा

काट दिये जाओगे

✍ श्याम नारायण श्रीवास्तव

तुम बहुत बढ़ गये हो
काट दिये जाओगे
जैसे काटे जाते हैं नाखून,
जैसे काटे जाते हैं बाल,
जैसे काट दिये जाते हैं पंख,
काट देता जैसे माली
बढ़ी हुई शाखाओं को,
घटा देता है पुजारी जैसे
तेज़ जलती दीपक की बाती को,
जैसे काट दिये गये
उस पार्टी कार्यालय के पेड़.
मानता हूं,
तुम्हारी निष्ठा और सेवा में
कमी नहीं है,
किंतु कमी है
तुम्हारे बढ़ने में,
तुम जितना बढ़ोगे
उनके लिए अपशकुन होगा
और फिर वे सब
काट दिये जायेंगे
जो-जो उनके लिए
अपशकुन होंगे
चाहे वे पेड़ हो
या फिर मानव

✍ बी.एफ-१ जिंदल स्टील एंड पावर लि.,
रायगढ़ (छ.ग.) ४९६००१

पाठकों/ग्राहकों से निवेदन

कृपया 'कथाबिंब' की सदस्यता राशि मनी ऑर्डर से भेजते समय, मनी ऑर्डर फॉर्म पर 'संदेश के स्थान' पर अपना नाम, पता, पिन कोड सहित साफ-साफ लिखें. मनीऑर्डर भेजने के बाद पोस्टकार्ड पर पूरे पते सहित इसकी सूचना अवश्य दें. आपकी सदस्यता अगले अंक से लागू होगी. पते में परिवर्तन की सूचना भेजते समय कृपया नये पते के साथ पुराने पते का उल्लेख करना न भूलें.

- संपादक

कविताएं

✍ रजनी मोरवाल

ज़िंदगी है क्या?

ज़िंदगी से
एक शाम समेटकर
मैं सोचने बैठी
कि आज.....
यह ज़िंदगी है क्या?
परिभाषाओं से परे
एक नाम है?
या मंज़िल के बिना
एक अंतहीन सफ़र
या फिर यह एक समुंदर है,
जिसमें कहीं मोती हैं,
तो कहीं ख़ाली सीपों-सी बजती
एक आशा है.
आख़िरकार
यह ज़िंदगी है क्या?
नंदनवन है?
या फिर सेमल के फूलों से
लदा एक उपवन ?
जिसमें, सिर्फ़ रंग-ही-रंग हैं
और ख़ुशबू का
अहसास तक नहीं!

बचपन के दिन

बहुत याद आते हैं मुझे
वो बचपन के दिन,
वो छोटी-सी रातें,
वो प्यारी-सी बातें,
वो मिट्टी के खिलौने
और
कच्ची-पकी निबोरियों का
बाज़ार लगाना.
वो सावन के झूले,
वो सखियों के संग नदी में नहाना,
वो हंसना-हंसाना
और गीली रेत से घर बनाना.
वो सखियों से रूठना
वो तितलियों को पकड़ना,
वो गुड़िया की शादी,
और
दूल्हा-बाराती.
सचमुच
बहुत याद आते हैं,
मुझे वो बचपन के दिन!

✆ डी-३०१, पार्क एवेन्यू, ओ.एन.जी.सी, चांदखेड़ा, अहमदाबाद-३८२४२४

लघुकथा

साधना

✍ राजेंद्र वर्मा

"भिक्षामि देहि, मां!" गेरुये वस्त्रों में सजे तेजोमय ललाटवाले प्रौढ़ व्यक्ति ने अपना चिमटा बजाया.

स्त्री ने साधु को पहचान लिया, पर प्रत्यक्षतः उसने नहीं पहचानने का उपक्रम किया. उसने शांत भाव से भिक्षा दी. पति की तथाकथित तपस्या में वह बाधा नहीं बनना चाहती थी.

अपनी साधना की सफलता पर पति आत्ममुग्ध था- उसने माया पर विजय पा ली है.... अब उसे लौकिकता से कुछ नहीं लेना-देना. उसका संसार ही पृथक है... उसने जीवन का लक्ष्य प्राप्त कर लिया है.

बूढ़े सास-ससुर की सेवा में ही पत्नी ने अपना जीवन लक्ष्य तलाश लिया था.

✆ ३/२१, विकास नगर, लखनऊ-२२६०२२

कविताएं

अधूरेपन की अनुभूति

✍ *मधु प्रसाद*

गीत बहुत लिख चुकी मगर क्यों
एक अधूरापन रहता है?
अंतर में पीड़ा का गायन
निर्झर के जैसा बहता है.
सोनल-सोनल धूप फागुनी
देख रही है कब से दरपन.
आंखों में रह गये कुवांरे
सपने, जो हंसते थे क्षण-क्षण.
लेखा-जोखा कौन किसे दे
अंबर भी चुप-चुप सहता है.
ताना-बाना टाट हो गया
जिसमें धागे थे रेशम के.
रुंधे गले से कैसे निकले
मीठे-मीठे स्वर सरगम के.
चिंतन की भट्ठी में केवल
तर्कों का ईंधन दहता है.
दूर क्षितिज पर सांझ गुनगुनी
और बसंती हवा मनचली.
इन दृश्यों की यादों से ही
मन के भीतर मची खलबली.
रेती-रेती नदी हो गयी
धरती का सीना कहता है.
कोरे रहे पृष्ठ जीवन के
महाकाव्य जिन पर लिखना था.
लघुकविता के हाथों शायद
मेरे अंतर को बिकना था.
एक एक कर चले गये सब
लो, अब यह गढ़ भी ढहता है.

✍ २९ गोकुल धाम सोसायटी, कलोल-महेसाणा, राजपथ, चांदखेड़ा, अहमदाबाद- ३८२४२४

निष्कासित

✍ **राही शंकर**

मेरा कोई भी नहीं है
यहां मैं कैसे किसी को जानूंगा
मैं तो हवा में उड़कर,
आंगन में गिरा एक पत्ता हूं
जिसे बुहार कर बाहर फेंक दिया गया था
और फिर फिर हवा,
मुझे इस घर के खिड़की दरवाज़ों पर
खड़ा कर देती है.
और मैं कैसे कहूं मैं यहां का हूं,
यह घर मेरा है,
यहां कुछ भी मेरा नहीं है
मैं तो हवा में उड़कर आया
एक पत्ता हूं..... जो चुप है.

पिता

एक चिथड़ा बादल
सर पे छत बनाता है,
और ख़ुद भींग कर
हमें बचाता है.
हमारे रिश्तों की दीवार
कितनी ही पुरानी हो जाये,
हम कितने ही अनमन ही जायें,
उसका मन हमारे लिए मोम होता है
कितनी सारी व्यथाएं जमा कर रखी हैं,
उसको तो केवल समय बताता है
हमारे सर पर छत बनाता है.

द्वारा शॉपी सेंटर, बूटी मोड़, रांची ८३४००९

卐 संस्कृति संरक्षण संस्था, मुंबई (पंजी.) 卐

भारत की सामासिक संस्कृति, साहित्य, कला, भाषा तथा स्वस्थ परंपराओं को संरक्षित एवं संवर्धित करने के उद्देश्य से ***संस्कृति संरक्षण संस्था*** की स्थापना की गयी है.

संस्था की कुछ नियमित गतिविधियां इस प्रकार हैं:

१. संगीत की कक्षाएं नियमित चलाना.

२. संस्था के भाषा-विभाग द्वारा ***"कथाबिंब"*** त्रैमासिक कहानी पत्रिका का नियमित प्रकाशन. पिछले दो वर्षों से पत्रिका ने, वर्ष २००७ के प्रारंभ में दिवंगत हुए हिंदी साहित्यकार पद्मविभूषण **श्रीयुत कमलेश्वर** की स्मृति में अपने वार्षिक कहानी पुरस्कार का नाम ***"कमलेश्वर-स्मृति कथाबिंब कथा पुरस्कार"*** रखा है. ये पुरस्कार पत्रिका में पूरे वर्ष में प्रकाशित कहानियों पर पाठकों के अभिमतों के आधार पर दिये जाते रहे हैं. ***"कथाबिंब"*** किसी भी भाषा की एक मात्र पत्रिका है जो इस प्रकार का आयोजन करती है.

३. संगीत-नृत्य के कार्यक्रम आयोजित करना.

४. हिंदी भाषा के प्रचार-प्रसार के कार्यक्रमों का आयोजन, जैसे : कवि-सम्मेलन व काव्य-सृजन प्रतियोगिताएं.

५. हिंदी-पुस्तकालय प्रबंधन / संचालन.

६. संस्था की गतिविधियों को और अधिक अच्छे ढंग से चलाने के लिए ज़मीन प्राप्त करने की दिशा में प्रयास जारी हैं.

७. जनसामान्य को सीधे प्रभावित करने वाले विषयों पर समय-समय पर संगोष्ठियों, परिचर्चाओं का आयोजन. संस्था द्वारा ***"कंप्यूटर के विविध उपयोग और हिंदी"*** विषय पर पहली संगोष्ठी, १३ अक्तूबर ०७ को आयोजित की गयी थी. तत्पश्चात, पिछले वर्ष १५ फरवरी ०९ को ***"भारतीय ऊर्जा समस्या, सुझाव व समाधान"*** विषय पर संस्था ने एक संगोष्ठी आयोजित की. कहना न होगा कि ये दोनों एक-दिवसीय संगोष्ठियां काफी सफलता पूर्वक संपन्न हुईं.

संगोष्ठी विषय

यह सही है कि एलोपैथी एक आधुनिक चिकित्सा पद्धति है जिसका विकास वैज्ञानिक अनुसंधान पर आधारित है. इसमें दो राय नहीं हो सकतीं कि बहुत से असाध्य रोगों में एलोपैथी कारगर सिद्ध होती है. विशेषकर कई बार तुरत-फुरत शल्यक्रिया करके रोगी के शरीर को स्वस्थ करने में एलोपैथी का कोई सानी नहीं है. इसी प्रकार वर्तमान में, मानव के जीवन काल को बढ़ाने में भी एलोपैथी की भूमिका को नकारा नहीं जा सकता. इसके साथ ही हमें यह भी स्वीकारना होगा कि आज बहुत से रोगों का उपचार एलोपैथी के पास नहीं है. यहीं पर चिकित्सा की वैकल्पिक पद्धतियों की भूमिका सामने आती है. होता यह है कि पूरी तरह निराश होकर हम चिकित्सा की अन्य पद्धतियों की ओर मुड़ते हैं. कई बार तब तक बहुत देर हो चुकी होती है. यदि हमें पहले से ही चिकित्सा की अन्य पद्धतियों के संबंध में समुचित जानकारी हो तो बिना अधिक समय गंवाये असाध्य और साथ ही सामान्य रोगों का निदान व उपचार संभव हो सकता है. इसी संदर्भ में, जनसामान्य को विस्तृत जानकारी उपलब्ध कराने की दिशा में २७ फरवरी २०१० को विवेकानंद कला, विज्ञान व वाणिज्य महा-विद्यालय, सिंधी सोसायटी, चेंबूर (मुंबई) में, सुबह ९.३० बजे *"चिकित्सा की वैकल्पिक पद्धतियां, निदान व उपचार"* विषय पर संस्था ने एक एक-दिवसीय संगोष्ठी आयोजित करने का निर्णय लिया है.

आपकी किसी भी प्रकार की भागीदारी का स्वागत है.

वार्ताओं के प्रमुख विषय :

१. रोग उपचार में होमियोपैथी, २. योग-साधना और स्वस्थ शरीर, ३. यूनानी चिकित्सा : विस्तृत जानकारी, ४. प्राकृतिक चिकित्सा से रोगोपचार, ५. आयुर्वेद : एक प्राचीनतम चिकित्सा पद्धति, ६. एकुप्रेशर व एकुपंक्चर से रोगोपचार, ७. कुछ अन्य वैकल्पिक चिकित्सा पद्धतियां

संपर्क

डॉ. मिथिलेश कु. सक्सेना

२५५६९०१७, २५२९९१०९, ९८२०४१८३११

डॉ. माधव सक्सेना

२५५१५५४१, ९८१९१६२६४८

श्री जयप्रकाश त्रिपाठी

२५५०७९८१, ९८२०४४०६१७

"कमलेश्वर-स्मृति कथाबिंब कथा पुरस्कार-२००९"

अभिमत-पत्र

वर्ष २००९ के सभी अंकों में प्रकाशित कहानियों के शीर्षक, रचनाकारों के नाम के साथ नीचे दिये गये हैं. पाठक अपनी पसंद का क्रम (१,२,३,...७,८) सामने के खाने में लिखकर हमें भेजें. आप चाहें तो इस **अभिमत-पत्र** का प्रयोग करें अथवा मात्र आठ कहानियों का क्रम अलग से **एक पोस्टकार्ड** पर लिख कर भेज सकते हैं. प्राप्त अभिमतों के आधार पर पिछले वर्षों की तरह ही सर्वश्रेष्ठ कहानी (१००० रु. - एक), श्रेष्ठ कहानी (७५० रु. - दो) तथा उत्तम कहानी (५०० रु. के पांच) पुरस्कार घोषित किये जायेंगे. जिन पाठकों की भेजी क्रमवार सूची अंतिम सूची से मेल खायेगी उन्हें **कथाबिंब** की **त्रैवार्षिक सदस्यता (१२५ रु.)** प्रदान की जायेगी. **कथाबिंब** ही देश की एकमात्र पत्रिका है जिसने इस तरह का लोकतांत्रिक आयोजन प्रारंभ किया हुआ है. इसकी सफलता इसी में है कि ज़्यादा से ज़्यादा पाठक अपना निष्पक्ष मत व्यक्त करें. पाठकों का सहयोग ही हमारा मुख्य संबल है.

कहानी शीर्षक / रचनाकार	आपका क्रम
१. **टूटा खिलौना** – अमर स्नेह	
२. **मकड़जाल** – कैलाश चंद्र जायसवाल	
३. **चुटकी भर सिंदूर बिना** – उर्मि कृष्ण	
४. **संबंध** (तेलुगु कहानी) – अंबला जनार्दन	
५. **रंग बदलता मौसम** – सुभाष नीरव	
६. **कैफ़ियत** – नूर मुहम्मद 'नूर'	
७. **घर आंगन और गिरगिटान** – कुंवर प्रेमिल	
८. **इच्छा-मृत्यु** – डॉ. प्रदीप अग्रवाल	
९. **स्लम-डॉग** – पी. डी. बाजपेयी	
१०. **एक थी हसीना** (मराठी कहानी) – उज्ज्वला केलकर	
११. **पांच मुट्ठी मिट्टी** – डॉ. निरुपमा राय	
१२. **एक्सीडेंट** – विजय शंकर 'विकुज'	
१३. **मुखबिर** – प्रमोद भार्गव	
१४. **कप वाली आइसक्रीम** – सिद्धेश्वर	
१५. **अंगीठी** – मनजीत शर्मा 'मीरा'	
१६. **लौटना** - सुशांत सुप्रिय	
१७. **कभी-कभी मेरे दिल में** ... – संजीव निगम	
१८. **भेड़िए** – नज़्म सुभाष	
१९. **मुक्ति** – महेश कटारे 'सुगम'	
२०. **अपराध-बोध** – नरेंद्र कौर छाबड़ा	

निवेदन

रचनाकारों से

*"**कथाबिंब**" एक कथाप्रधान पत्रिका है, कहानी के अलावा लघुकथाएं, कविता, गीत, ग़ज़लों का भी हम स्वागत करते हैं. कृपया पत्रिका के स्वभाव और स्तर के अनुरूप ही अपनी श्रेष्ठ रचनाएं प्रकाशनार्थ भेजें. साथ में यह भी उल्लेख करें कि **विचारार्थ भेजी गयी रचना निर्णय आने तक किसी अन्य पत्रिका में नहीं भेजी जायेगी.***

१. कृपया केवल अपनी अप्रकाशित और मौलिक रचनाएं ही भेजें. अनूदित रचना के साथ मूल लेखक की अनुमति आवश्यक है.

२. रचनाएं काग़ज़ के एक ओर अच्छी हस्तलिपि में हों या टंकित हों. **कृपया ई-मेल का उपयोग रचना भेजने के लिए न करें.**

३. रचनाओं की प्रतिलिपि अपने पास अवश्य रखें. वापसी के लिए स्व-पता लिखा, टिकट लगा लिफ़ाफा व एक पोस्ट कार्ड अवश्य साथ रखें, अन्यथा रचना संबंधी किसी भी प्रकार का पत्राचार करना संभव नहीं होगा.

४. सामान्यतः प्रकाशनार्थ आयी कहानियों पर एक माह के भीतर निर्णय ले लिया जाता है. अन्य रचनाओं की स्वीकृति की अवधि दो से तीन माह हो सकती है. कहानियों के अलावा चयन की सुविधा के लिए एक बार में कृपया एक से अधिक रचनाएं (लघुकथा, कविता, गीत, ग़ज़ल आदि) भेजें.

ग्राहकों /सदस्यों से

कृपया समय रहते अपने शुल्क का नवीनी करण करा लें. नये सदस्यों /ग्राहकों को शुल्क प्राप्त की सूचना अलग से भेजना संभव नहीं है. यदि तीन माह के भीतर नया अंक न मिले तो कृपया अवश्य सूचित करें.

Mob. 09939492410, College Phone : 0621-2220743

J. P. I. P. Medical Science & Hospital

(Regd. by N. C. T. of Delhi, Govt. of India)

AFFILIATED WITH

(1) Medical Council of Patent Medicine Open International University of WHO, Delhi;
(2) Para Medical Technology Council, Delhi; (3) Rajasthan Vidyapeeth Deemed University Faculty of Medical Science, Distance Education Wing.

Head Office : 1/54 Trilok Puri, New Delhi-400 091. Ph. : 09999221698.
Branch Office : Rd. No. 5, Juran Chhapra, Muzaffarpur-842001(Bihar).

All Cources are approved by High Court,
Recognised by WHO & Accepted by Govt. of India.

COURSES OFFERED :

Degree : Medical - B. A. M. S., 4yrs. Qualification - Inter any Stream.
Dental - B. D. A. S., 3yrs. Qualification - Inter.
Diploma - (Paramedical) 2yrs., DMLT (Lab), X-Ray (DMRT),
A.N.M., Asst. Nursing (सहायक नर्स)- Male/Female, OT Asst. (DOTT).

1. संपूर्ण भारत में Medical Practice हेतु मान्य; 2. अवकाश प्राप्त अभ्यार्थियों की प्रैक्टिस हेतु प्रशिक्षण की सुविधा उपलब्ध; 3. पत्राचार द्वारा Study Material के साथ पाठ्यक्रम पूर्ण करने की सुविधा उपलब्ध.

निदेशक : डॉ. के. बी. श्रीवास्तव (एम. डी.)